वर्ष ४२] [अङ्क ७

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

संस्करण १,५०,०००

विषय-सूची

कल्याण, सौर श्रावण २०२५, जुलाई १९६८

चित्र-सूची

वार्षिक मूल्य भारतमें ९.०० विदेशमें १२.३५ (१५ शिलिंग)

जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥

साधारण प्रति भारतमें ५० पै० विदेशमें ८० पै० (१० पेंस)

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री

मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

प्रभासक्षेत्रमें श्रीकृष्णार्जुन-मिलन

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥
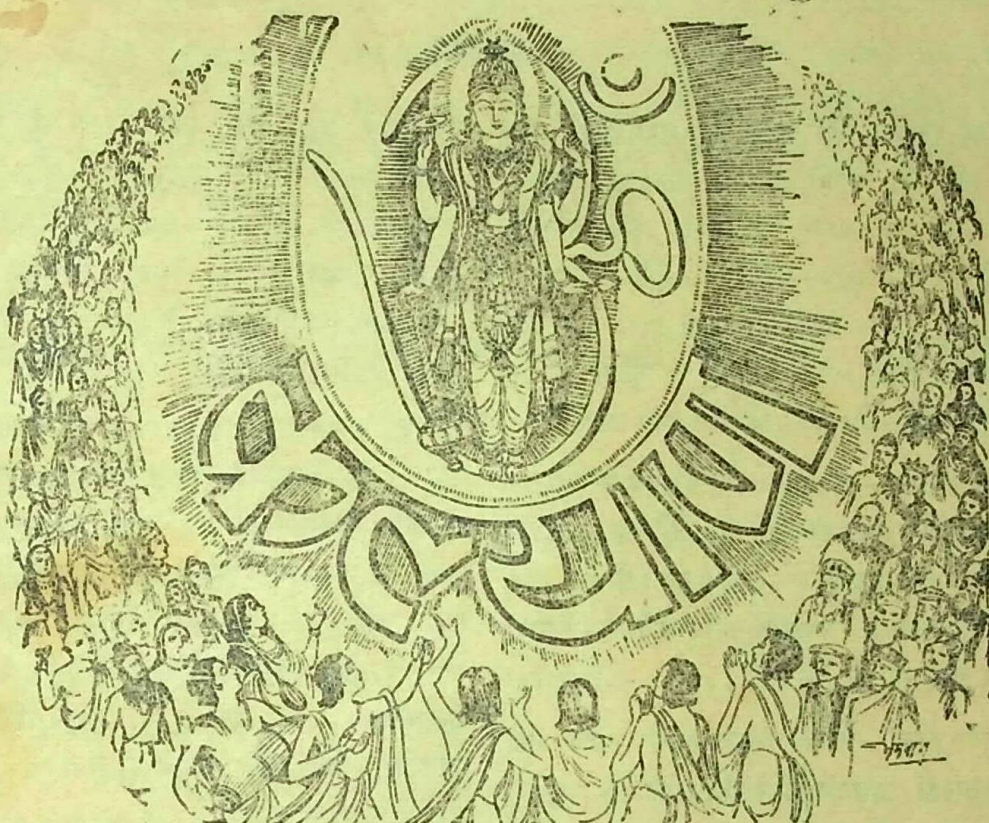
त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च ।
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥

वर्ष ४२ } गोरखपुर, सौर श्रावण २०२५, जुलाई १९६८ { संख्या ७ पूर्ण संख्या ५००

प्रभास-क्षेत्रमें श्रीकृष्णार्जुन-मिलन

ब्राह्मणके गोधनकी रक्षा की अर्जुनने धर्म विचार ।
राज्य-त्याग बारह वर्षोंके लिये किया समोद स्वीकार ॥
तीर्थाटन करते पहुँचे वे सागर-तटपर तीर्थ प्रभास ।
समाचार पा दूतोंसे आये श्रीकृष्ण सखाके पास ॥
हृदय लगाकर मिले परस्पर नर-नारायण मित्र पवित्र ।
प्रेम-सुधा-रस-सागर उमड़ा मधुर दशा शुचि हुई विचित्र ॥

(महाभारत, आदिपर्व, अध्याय २१७)

जुलाई १—

याद रक्खो—जब कामना पूरी नहीं होती, उसपर चोट लगती है, हमारी इच्छाके विरुद्ध कुछ होता है, तब मनमें एक जलती हुई वृत्ति उत्पन्न होती है, उसका नाम है—क्रोध। क्रोध उत्पन्न होनेपर विवेक नष्ट हो जाता है, मन बेकाबू हो जाता है; वाणी मर्यादा, लज्जा तथा शील छोड़ देती है; व्याकुलता, उग्रता, अशान्ति, हिंसा और विनाशके भाव जाग उठते हैं।

याद रक्खो—जब क्रोध आता है, तब मुख तमतमा जाता है, आँखें लाल हो जाती हैं, भौंहें चढ़ जाती हैं। शरीर काँपने लगता है, होंठ चलने लगते हैं और इतनी मूर्खता छा जाती है कि क्रोधी मनुष्य आवेशमें भविष्यको भूलकर चाहे सो कर बैठता है।

याद रक्खो—क्रोधी मनुष्य कभी स्वस्थ नहीं रहता, उसकी पाचनशक्ति नष्ट हो जाती है। गुर्देकी तथा यकृतकी क्रिया विकृत हो जाती है। मुखसे अनर्गल निकलनेवाले कुत्सित, अश्लील और हिंसाभरे शब्द उसके शरीरपर वैसा ही प्रभाव डालते हैं। मनकी आग देहको भी जलाती है। संहार तथा विनाशका एक ऐसा घोर रूप बन जाता है जो शरीरके नाश—आत्महत्या आदिके लिये बलपूर्वक प्रेरणा देता है।

याद रक्खो—क्रोध तमोगुणका मूर्त रूप है। तमोगुण बुद्धिका विनाश करता है, नीच कार्य करवाता है, प्रमादमें प्रवृत्त करता है और अधोगतिमें ले जाता है। क्रोध महाशत्रु है और शान्ति-सुख, लोक-परलोक और भुक्ति-मुक्ति, सबका सहज ही नाश कर देता है।

याद रक्खो—क्रोध शरीर तथा मनके सौन्दर्य-माधुर्यको नष्ट कर देता है। क्रोधी मनुष्यका मुख तथा सारे अङ्ग—कुल शरीर विकृत हो जाते हैं। उसकी मधुरता तथा सुन्दरता मर जाती है तथा मनमें रहनेवाले प्रेम, त्याग, दया, सेवा, शील, शान्ति, सद्भावना, न्याय, विवेक, वैराग्य, स्वास्थ्यकर विचार, आध्यात्मिक साधनाके भाव, जो मनके वास्तविक सौन्दर्य-माधुर्य हैं, मिट जाते हैं।

याद रक्खो—क्रोधको यदि तनिक भी रहने दिया जाय तो वह चिरस्थायी मानस रोग बन जाता है, जो स्वभावमें चिड़चिड़ापन, अविश्वास, अहङ्कार, उद्वेग, अस्थिरता, कपट, असहिष्णुता, दूसरोंको दुःख पहुँचानेकी इच्छा आदि नये-नये मानस रोगोंको उत्पन्न करता और बढ़ानेमें सहायक होता है। क्रोधसे दीर्घकालीन जन्मान्तरतक चलनेवाले वैर, हिंसा-प्रतिहिंसा-जैसे पतनकारी घोर दुर्गुण उत्पन्न हो जाते हैं जो हमारे सर्वनाशके कारण होते हैं।

याद रक्खो—जिसके मनमें क्रोध उत्पन्न होता है, वह क्रोध आते ही तुरंत जलने लगता है और जिसपर क्रोध आता है, वह क्रोधके व्यक्त होनेपर जलता है। फिर तो क्रोधाग्निमें परस्परके अनर्गल अविवेकयुक्त वाक्योंकी आहुति पड़ने लगती है जो क्रोधको उत्तरोत्तर बढ़ाती रहती है।

याद रक्खो—उपर्युक्त दोषोंके अतिरिक्त अन्यान्य सहस्रों दोषोंकी खान तथा योनि है क्रोध। अतएव क्रोधसे सदा ही बचना चाहिये। जब हम सबके मनकी नहीं कर सकते, तब सब हमारे मनकी करें—यह आशा हमें क्यों करनी चाहिये और जब भगवान्‌के मङ्गल-विधानानुसार फल पहलेसे निश्चित है, तब हमें क्यों कामना करनी चाहिये।

याद रक्खो—कामना और अपने मनकी हो—ऐसी इच्छा न होगी तो क्रोध आवेगा ही नहीं। फिर सदा

शान्ति रहेगी। पर यदि किसी कारणसे क्रोध आ भी जाय तो उस समय उसे अपने अंदर ही रखकर अपने-आप मर जाने दो। बाहर उसकी क्रिया मत होने दो। क्रोध आनेपर बोलो मत। मौनका नियम कर लो या भगवान्‌के पवित्र नामका जप आरम्भ कर दो। क्रोधको आश्रय नहीं मिलेगा—अर्थात् उसके आवेशमें कोई क्रिया नहीं होगी तो वह आप ही नष्ट हो जायगा।

'शिव'

ब्रह्मलीन पूज्यपाद अनन्तश्रीविभूषित श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके अमृतोपदेश

(संकलन-कर्ता और प्रेषक—श्रीशालिगरामजी)

इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि भगवान्‌के नाममें पापोंको नाश करनेकी बड़ी भारी शक्ति है। *'नाम अखिल अघ पुंज नसावन'* यह उक्ति सर्वथा सत्य है; परंतु लोग इसका रहस्य नहीं जाननेके कारण इसका दुरुपयोग कर बैठते हैं। वे सोचते हैं कि नाममें पाप-नाशकी महान् शक्ति है ही; अभी पाप कर लें, फिर नाम लेकर उसे धो डालेंगे। यह सोचकर वे अधिकाधिक पाप-पङ्कमें फँसते ही चले जाते हैं। वे यह नहीं विचारते कि यदि वास्तवमें उनकी यह मान्यता ठीक हो, तब तो नामका जप पापोंका विनाशक नहीं, प्रत्युत वृद्धि करनेवाला ही सिद्ध हुआ; क्योंकि फिर तो सभी लोग नामका आश्रय लेकर मनचाहा पाप करने लगेंगे और इससे वर्तमान कालकी अपेक्षा भविष्यमें पापोंकी संख्या बहुत अधिक बढ़ जायगी। जिस प्रकार पुलिसकी पोशाक पहनकर चोरी करनेवाला साधारण चोरकी अपेक्षा अधिक दण्डनीय होता है, उसी प्रकार भगवन्नामकी ओट लेकर पाप करनेवाला व्यक्ति अधिक दण्डका पात्र हो जाता है; क्योंकि उसके पाप वज्रलेप हो जाते हैं, विना भोगे उनका विनाश नहीं होता।

× × ×

वाणीके द्वारा नाम जपनेकी अपेक्षा मनसे जपना सौगुना अधिक लाभदायक है और वह मानसिक जप भी श्रद्धा-प्रेमसे किया जाय तो उसका अनन्त फल है; तथा वही गुप्त और निष्कामभावसे किया जाय तो शीघ्र ही परमात्माकी प्राप्ति करानेवाला है। अतः इस रहस्यको भलीभाँति समझकर भगवन्नामका आश्रय लेना चाहिये।

× × ×

असलमें नाम और नामीमें कोई भेद नहीं है। वे भिन्न होते हुए भी सर्वथा अभिन्न हैं। गीतामें भगवान् कहते हैं—

'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि' (१० । २५)

'सब यज्ञोंमें जपयज्ञ मैं हूँ'—अर्थात् अन्य समस्त यज्ञ तो मेरी प्राप्तिके साधन हैं, पर जपयज्ञ (नाम-जप) तो स्वयं मैं ही हूँ। जो इस तत्त्वको हृदयङ्गम कर लेता है—ठीक-ठीक समझ लेता है, वह नामको कभी भूल नहीं सकता।

× × ×

जो नित्य-निरन्तर भगवान्‌के नामका जप करता रहता है, वह सद्‌गुणोंका समुद्र बन जाता है। जिस प्रकार सागरमें अनन्त जलराशि होती है, उसी प्रकार उसमें अनन्त सद्‌गुण आ जाते हैं। इससे सिद्ध होता है कि नाम बीजकी तरह है। जैसे बीजके बो देनेपर उसमेंसे फूटकर अङ्कुर उत्पन्न होता है एवं वही पुष्पित

और पल्लवित होकर विशाल वृक्ष बन जाता है, वैसे ही नाम जपनेवालेमें अनायास ही सारे सद्गुणोंका प्रादुर्भाव हो जाता है।

इसके लिये मनुष्यको भगवन्नामके गुण, प्रभाव, तत्त्व और रहस्यको समझना चाहिये। इस प्रकार समझनेसे ही उसकी नाममें परम श्रद्धा होती है और श्रद्धासहित किया हुआ जप ही तत्काल पूर्ण फल देता है। अतः भगवान्‌के नाममें अतिशय श्रद्धा उत्पन्न हो, इसके लिये हमलोगोंको सत्पुरुषोंका सङ्ग करना चाहिये। सत्पुरुषोंका सङ्ग न मिलनेपर हमें सत्-शास्त्रोंका—जिनमें भगवान् और उनके नामके तत्त्व, रहस्य, गुण, प्रभाव, श्रद्धा और प्रेमकी बातें बतायी गयी हों—अनुशीलन करना चाहिये। इस प्रकार करनेसे भगवन्नाममें श्रद्धा-प्रेम उत्पन्न हो जाता है; और किये हुए जपका फल भी, जिसका शास्त्रोंमें वर्णन है, तत्काल प्रत्यक्ष देखनेमें आ सकता है।

× × ×

····भाव ही प्रधान है, क्रिया नहीं। इसलिये हमें उचित है कि हम जब कभी कोई क्रिया करें, उसे उत्तम-से-उत्तम भावसे करें।

× × ×

जब नीची-से-नीची क्रिया भी उत्तम-से-उत्तम गति प्राप्त करा सकती है, तब फिर जहाँ क्रिया भी उत्तम-से-उत्तम हो और भाव भी उत्तम-से-उत्तम हो, वहाँ तो कहना ही क्या है।

× × ×

'विषमता ही विष है और समता ही अमृत है।'

× × ×

····ईश्वर दयालु और न्यायकारी है। ईश्वरमें केवल दयालुता या केवल न्यायकारिताका एकाङ्गीभाव नहीं है, उसमें ये दोनों ही गुण एक ही समय, एक ही साथ पूर्णरूपसे रहते हैं और वे जीवोंके प्रति व्यवहार करनेमें दोनों ही भावोंसे एक ही साथ काम लेते हैं।

× × ×

अवश्य ही मनुष्यके न्यायमें इस गलतीके लिये गुंजाइश रह सकती है कि वह किसी स्थलमें न्यायानुकूल कर्म करनेवालेको भी दण्डनीय समझ ले, परंतु अन्तर्यामी सर्वतश्चक्षु परमात्माके यहाँ तो ऐसी भूलकी कोई सम्भावना ही नहीं।

× × ×

क्रोधमें मनुष्यकी बुद्धि मारी जाती है।

कुसंगका फल बहुत बुरा होता है।

× × ×

····अतः मनुष्योंको उचित है कि विषयोंसे मन-इन्द्रियोंका संयम करके उन्हें परमात्माकी ओर लगाये।

× × ×

त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये।

सौंपकर नौका तुम्हारे हाथ

सौंपकर नौका तुम्हारे हाथ,
हो गया मैं पूण-काम, सनाथ।
हूँ अचिन्तित और हूँ आश्वस्त;
हूँ अभय, रक्षक निरन्तर साथ॥

—बालकृष्ण बलदुवा

एक महात्माका प्रसाद

[लक्ष्य]

(प्रेषक—श्री'माधव')

सभी साधनोंका पर्यवसान अचाह पदमें है। कारण कि अचाह होनेपर ही अप्रयत्न और अप्रयत्न होनेपर ही साध्यसे अभिन्नता प्राप्त होती है। विचार यह करना है कि चाहकी उत्पत्तिका हेतु क्या है? रुचि और अरुचिरूपी भूमिमें चाहरूपी दूर्वा उत्पन्न होती है। रुचि और अरुचिके मिटते ही अचाह पद स्वतः प्राप्त हो जाता है। हमसे बड़ी भूल यही होती है कि जो वास्तवमें 'अपना' है, उसमें अरुचि और जिससे केवल मानी हुई एकता है उसमें रुचि उत्पन्न कर लेते हैं। फिर चाहके जालमें फँसकर जो नहीं करना चाहिये उसे करने लगते हैं और जो करना चाहिये उसे नहीं कर पाते। 'अपना' वह है जिससे देश-कालकी दूरी न हो, जो उत्पत्ति-विनाशयुक्त न हो और जो अपनेको अपने आप प्रकाशित करनेमें समर्थ हो। जो 'अपना' है उससे वियोग सम्भव नहीं है, जो अपना नहीं है उससे वियोग होना अनिवार्य है। इस दृष्टिसे शरीर, प्राण, इन्द्रिय, मन आदिको भी अपना नहीं कह सकते, परंतु इसका अर्थ यह नहीं कि जिसे हम अपना नहीं कह सकते वह हमारी सेवाका पात्र नहीं है। हाँ, यह अवश्य है कि उससे प्रेम नहीं किया जा सकता। शरीर आदि सभीकी सेवा की जा सकती है; परंतु उनसे न तो ममता की जा सकती है न प्रेम। प्रेम उसीसे किया जा सकता है जो उत्पत्ति-विनाशरहित है। प्रेम करनेके लिये हमें अपने आपको समर्पण करना पड़ता है और सेवा करनेके लिये संग्रह की हुई वस्तु एवं योग्यता आदिको देना पड़ता है। प्रेम हमें अन्तर्मुख जीवनसे अभिन्न करता है और सेवा क्रियाशीलता प्रदान करती है।

जिस प्रकार अचल हिमालयसे अनेक नदियाँ निकलती हैं और भूमिको हरा-भरा बनानेमें समर्थ होती हैं, उसी प्रकार अन्तर्मुख प्रेमयुक्त-जीवनसे सेवारूपी अनेक नदियाँ निकलती हैं और विश्वको हरा-भरा बनानेमें समर्थ होती हैं। प्रेमसे अपना कल्याण और सेवासे सुन्दर समाजका निर्माण होता है। सेवा-भावसे उत्पन्न हुई क्रियाशीलता प्रेमको पुष्ट करती है और प्रेम सेवाको सजीव बनाता है। सेवा तथा प्रेम-युक्त जीवनसे ही रुचि-अरुचिका अन्त होता है। रुचि-अरुचिका अन्त होते ही अहंभाव गल जाता है। अहंभावके गलते ही सब प्रकारकी चाहका अन्त हो जाता है फिर लक्ष्यसे अभिन्नता स्वतः प्राप्त हो जाती है। यही जीवनका लक्ष्य है।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

ॐ आनन्द

नेत्रोंका फल

नयननिको इतनोई फल है करैं सदा माधव दरसन।
नीलस्याम-घन-बरन, पीतपट बिजुरीबरन परम सोभन॥
हियपर मुक्तामनि-बनमाला कौस्तुभ दिव्य नित्य राजित।
मधुर स्मित सोभित बिंबाधर, श्रवन मकर-कुंडल भ्राजित॥

भाल तिलक कस्तूरी सोभित, भ्रमर-कृस्न घुँघुरारे केस।
रत्नमुकुट-सिखिपिच्छ मनोहर, नित्य मधुर नव नटवर बेस॥
कोटि कोटि-मन्मथ-मनहारी अधर धरे मुरली गावत।
बल-बालक-गोवृंद संग लै नाचत बृंदावन आवत॥

वेणुगीत

('श्री' श्रीकृष्णप्रेमी महाराज विरचित एवं श्रीयुक्त टी० सी० श्रीनिवासनद्वारा अनूदित)

[गताङ्क पृष्ठ ९८३ से आगे]

चारों ओर हरी-भरी सुकोमल घाससे आच्छादित भूतल नयनोंको सुख देता है। वायुसे कम्पित वृक्षोंसे जहाँ-तहाँ पुष्प गिरकर बिखरे पड़े हैं। सुगन्धित वायु बहती है। श्रीकृष्णने यमुनाजीके किनारेपर गायोंको छोड़ दिया, जहाँ वे घास चर रही हैं और स्वयं अपने मित्रमण्डलके साथ गम्भीर गतिसे चलकर एक पत्थरपर आ बैठे हैं। उनको घेरकर और सब बालक भी बैठ गये। श्रीकृष्णके आभूषण, जिनसे यशोदाने उनका शृंगार किया था, बाल-सूर्यकी किरणोंसे उज्ज्वल थे। सच्चा प्रेम हो तो वह चुप रहने नहीं देता। मनमें सदा ही इच्छा बनी रहेगी कि प्रियतमसे कुछ मधुरालाप होता रहे, उन्हें लालन करते रहें या उनका नया-नया शृंगार करते रहें। श्रीकृष्ण तो सर्वाभरणभूषित आये हैं। फिर भी वे बालक अपनी इच्छासे किसी-न-किसी रूपसे उन्हें और भी सजाना चाहते हैं।

चूतप्रवालबर्हस्तबकोत्पलाब्ज-
मालानुपृक्तपरिधानविचित्रवेषौ ।
मध्ये विरेजतुरलं पशुपालगोष्ठ्यां
रङ्गे यथा नटवरौ क्व च गायमानौ ॥
(श्रीमद्भागवत १० । २१ । ८)

[अरी सखी ! आमकी नयी कोंपलें, मोरोंके पंख, पुष्पोंके गुच्छे और भाँति-भाँतिके कमल तथा कुमुदकी मालाएँ धारण करके श्रीकृष्ण पीताम्बर तथा बलराम नीलाम्बरसे सुसज्जित होकर अत्यन्त विचित्र वेष बनाकर गोप-बालकोंके बीचमें विराजकर मधुर सङ्गीतकी तान छेड़ देते हैं, उस समय उनकी ऐसी शोभा होती है मानो रंगमंचपर दो चतुर नटवर अभिनय कर रहे हों।]

नवीन आम्रपल्लव रेशमके समान कोमल और सुन्दर है। गोप-बालकोंने उनको तोड़कर गूँथ लिया और उसीको पीताम्बरके रूपमें श्रीकृष्णको पहना दिया। घुँघची और कौड़ी, सीप और शंख—इनको चुन-चुनकर उनका एक हार बनाया और उसे बड़े स्नेहसे श्रीकृष्णके कण्ठमें समर्पित किया। वन्य-पुष्पोंको चुनकर एक माला बनायी और उसे श्रीकृष्णके गलेमें झुला दिया। कुछ बालसखाओंने पहाड़ोंसे विभिन्न धातुओंको लाकर उनका चूर्ण किया और उससे श्रीकृष्णके ललाट तथा कपोलपर चित्रण कर दिया। इतनेमें एक मोर आ पहुँचा और वह श्रीकृष्णको देखकर नाचने लगा। उसने अपनी ओरसे श्रीकृष्णको एक पंख समर्पित किया। उसे लेकर एकने श्रीकृष्णके सिरपर लगा दिया। बस, श्रीकृष्णका शृंगार पूरा हो गया और सबने ताली बजाकर आनन्द मनाया। सभी बालक शंख और बाँसुरी, दुन्दुभि और ढोल बजाते, नाचते चले। श्रीकृष्ण भी भाई बलदेवजीके साथ झूमते हुए चल पड़े। पैरोंके घुँघरू झनझना उठे। श्रीकृष्णकी शोभा समस्त वृन्दावनमें विलक्षण चाँदनीके सदृश फैल रही थी। वृन्दावन एक रंगमंच-सा सुहावना लग रहा था। श्रीकृष्ण और उनके भाई उसपर सूत्रधार और विदूषकके समान थे। अन्य गोपबालक दूसरे नाटक-पात्रोंकी तरह दीखते थे। इसी बीच राम और श्याम—दोनों भैया अपने सिरोंको टेढ़ा करके हाथ हिला-हिलाकर मधुर रागका आलाप करने लगे। कैसा मनोहर दृश्य ! यह सब अभी देखकर आयी हुई एक गोपीने दूसरीसे कहा—

इसे सुनकर दूसरी एक गोपी हथेलीपर कपोल धरे खंभे-पर पीठ सटाये प्रतिमाके समान कुछ समयतक निश्चल खड़ी रही। तब एक लंबी साँस छोड़कर कहने लगी—

गोप्यः किमाचरदयं कुशलं स्म वेणु-
र्दामोदराधरसुधामपि गोपिकानाम् ।
भुङ्क्ते स्वयं यदवशिष्टरसं ह्रदिन्यो
हृष्यत्त्वचोऽश्रु मुमुचुस्तरवो यथाऽऽर्याः॥
(श्रीमद्भागवत १० । २१ । ९)

[अरी गोपियो ! इस मुरलीका यह कितना पुण्य सौभाग्य है कि वह श्रीकृष्णके उस अधरामृतका जो हम गोपियोंकी सम्पत्ति है—इस प्रकार स्वच्छन्दतासे पान किये जा रही है जो मानो कुछ भी रस शेष नहीं बचेगा। यदि कुछ बचेगा तो उसको पीकर ये ह्रदिनियाँ (सरोवर) कमलोंके बहाने रोमाञ्चित हो रही हैं और वृक्ष भी मधुके बहाने आनन्दाश्रु बहाते हैं, मानो ये अचेतन नहीं, सुशील सज्जन हैं।]

'सखि ! गोकुलके वृद्धजन कहते हैं कि हम भी बालक रहते तो हमारा कितना सौभाग्य होता ? श्रीकृष्णके साथ निस्संकोच कूद-कूदकर खेल सकते। गोकुलके बालकोंका कहना है कि हम गोपियाँ होतीं तो श्रीकृष्ण हमें भी रास-क्रीडामें सम्मिलित करते। हमारे महान् सौभाग्यमें भी यह तो एक दुर्भाग्य ही है कि हमने पुरुषके रूपमें जन्म लिया। मैं तो गोपी हूँ। तुम जानती हो कि मैं क्या सोचती हूँ। मेरा विचार यही है कि हाय ! मुझे वेणुका जन्म नहीं प्राप्त हुआ। वेणुके सौभाग्यकी बात हम क्या कहें ? हमें तो श्रीकृष्णका अधरामृत किसी एक समयपर थोड़ी देरके लिये प्राप्त होता है। परंतु यह मुरली तो सदा-सर्वदा उसका आस्वादन कर रही है और इसमें उससे स्पर्धा करनेवाला कोई नहीं। हाँ, मैं यह भी कहूँगी कि हमारी राधाजीसे भी यह कहीं बड़ी भाग्यवती है; क्योंकि इस मुरलीको श्रीकृष्णसे कभी वियोग है ही नहीं। श्रीकृष्ण कभी उसे अधरमें रखकर बजाते हैं तो कभी हाथसे घुमाते सुन्दर गतिसे चलते हैं। कभी उसे अपने कपोलपर रखकर धीरे-धीरे रगड़ते हैं, तो कभी उसे कमरमें और कभी अपनी पगड़ीमें खोंस लेते हैं। एक बार उसे अपने हाथों श्रीयमुनाजीमें स्नान कराते हैं। किसी समय उस मुरलीसे गोपबालिकाओंपर एक मधुर चोट करते हैं। कभी उससे दहीकी मटकियोंको फोड़ते हैं। कभी उसे बाजीमें रखकर राधासे जुआ खेलते हैं तो कभी उसे बजाकर राधाको बुलाते हैं। घर लौटते समय तो उसे बजाकर ही गायोंको बुलाते हैं और किसी समय उसीको बजाकर मुनियोंकी सुदृढ़ निष्ठाको ही भंग कर देते हैं। उसे अपने हाथमें तो सभी समय लिये रहते हैं।

एक समय श्रीराधाजीने उस मुरलीको चुरा लिया। श्रीकृष्णने उनके पास जाकर हाथ जोड़ सिर नवाकर कातर कण्ठसे प्रार्थना की, 'राधे ! मुरली मुझे लौटा दो।' 'नहीं दूँगी, नहीं दूँगी' कहती हुई राधा श्रीकृष्णको चिढ़ाती दौड़ने लगीं। वे उसके पीछे दौड़े। अन्तमें किसी प्रकार साहस करके श्रीराधाके हाथसे मुरलीको छीनकर ही लौटे। और तो क्या—सोनेके समय भी मुरलीको अलग नहीं करते। उसे अपने बगलमें रखकर ही सोते हैं। मुरलीकी इस महिमाको देखकर क्या हमारे मनमें ऐसा नहीं लगता कि सौभाग्यवती तो यह मुरली है। हमारे इस गोपी-जन्मसे क्या लाभ ?

इस प्रकार वह बोलती ही रही, तब दूसरी एक गोपीने उसकी बात काटकर कहा—'अरी, तुम तो वेणुकी बात कहती हो, इस वृन्दावनकी तो सरिताएँ और सरोवर भी बड़े भाग्यवान् हैं। हम तरसती ही रहती हैं कि किसी समय श्रीकृष्णका अधरामृत हमें प्राप्त हो। वह कमल-सरोवर तो उनके अधरामृतको मानो लूट रहा है। एक दिन मैं कमल-सरपर जल लाने गयी। उसके घाटपर बहुत-से अशोकवृक्ष थे। दोनों तटोंपर हरी-हरी घासका मैदान फैला था। निर्मल जलमें कमल विकसित थे। कमलोंके चारों ओर मधुकर गुंजार करते मँड़रा रहे थे। बीच-बीचमें शुभ्र हंस तैर रहे थे। प्रकृतिकी यह सुषमा देखकर मैं मुग्ध हो गयी और कमरमें कलश लिये स्तब्ध होकर निश्चल खड़ी रही। यह कल्पना ही नहीं थी कि नन्दकुमार आ जायँगे। अपनी मोहन गतिसे चलकर वे उस घाटमें उतरे। मुझे कुछ भय लगता था कि वे मेरे पास आकर कहीं कोई नटखटपन न करें। साथ ही उन्हें देखनेकी इच्छा तो मनमें जोरकी थी ही। अच्छा हुआ कि उन्होंने कोई अनुचित व्यवहार नहीं किया और साधु-जैसे दूर ही रहे। उनके अधर नीले-नीले-से हो रहे थे; क्योंकि उन्होंने आँवलेके बहुत-से फल खा लिये थे। फिर सरोवरमें उतरे और दोनों बाहुओंको पीछे बाँधकर मुँहसे ही गायोंकी तरह पानी पीने लगे। क्या जलको हाथमें लेकर नहीं पी सकते ? वे तो बड़े रसिक हैं। सदा मनमानी करते हैं। पर्याप्त जल पीनेके बाद उन्होंने और कुछ जल मुँहमें ले भर लिया और सरितामें ही उसका कुल्ला कर दिया। सिर उठाकर उनके देखनेके पहले ही मैं एकदम भागकर इधर आ गयी। मेरे मनमें इच्छा थी कि श्रीकृष्ण उस जलको मेरे ऊपर कुल्ला कर देते तो कितना अच्छा होता। अब तुम ही सोचकर देखो कि उस सरोवरका कितना बड़ा भाग्य है। वह हमें प्राप्त है क्या ?'

एक दूसरी गोपी, जो यह सब सुन रही थी, कहने लगी—'मैं सोचती हूँ कि वृन्दावनके वृक्ष भी बड़े भाग्यवान् हैं। एक दिन श्रीगोपाल एक मार्गसे चले जा रहे थे, जिसके दोनों ओर घने वृक्ष थे। उस समय वृक्षोंमें एक कम्पन हुआ। मैंने सोचा कि कदाचित् बंदर पेड़ोंको हिला रहे हैं। पर वैसा नहीं था; वृक्ष अपने-आप हिल उठे थे। वृक्षोंकी शाखाओंसे श्रीकृष्णके शरीरपर पुष्पोंकी एक वर्षा-सी हुई। वह दृश्य कितना सुन्दर था, जानती हो ? हरिका स्मरण आते ही भक्तोंके शरीरमें एक कम्पन, उनके

अङ्गोंमें रोमाञ्च और नेत्रोंमें आनन्दाश्रुओंका उदय हो जाता है; वही कम्पन जब श्रीकृष्ण उनके समीप आये तब इन पेड़ोंको हुआ। उनकी त्वचाएँ पुलकित हो उठीं, अश्रुके समान पुष्प गिरने लगे। यदि वे वृक्ष जड-वस्तुमात्र होते तो उनको श्रीकृष्ण-रसका कैसे अनुभव होता ? अतः मेरा विश्वास है कि वे अवश्य कोई श्रेष्ठ ऋषि हैं, जिन्होंने किसी जंगलमें किसी जन्ममें तपस्या की थी और अब वे इस जन्ममें वृन्दावनमें वृक्षरूपसे उत्पन्न होकर श्रीकृष्णकी आराधना कर रहे हैं।

और एक गोपी बोली—'श्रीकृष्णके विषयमें कितना भी कहा जाय, मनसे निरन्तर अमृतका स्रवण होता है। जरा भी जी नहीं ऊबता। धर्म-कर्म सब विस्मृत हो जाते हैं। तुमने कहा कि ये वृक्ष पुण्य-सौभाग्यके कारण ही वृन्दावनमें उत्पन्न हुए हैं। ठीक है, पर क्या हमने पुण्य नहीं किया है ? यदि हम किसी दूसरे गाँवमें जन्म लेकर श्रीकृष्णको जान ही न पातीं तो क्या करतीं ? कौन जानता है कि हमारा कैसा यह सौभाग्य है कि हम श्रीकृष्ण-जन्मसे पावन उसी गाँवमें उत्पन्न होकर, श्रीकृष्णके साथ ही खेलकर श्रीकृष्णसम्बन्धी बातें ही कर रही हैं। अहोभाग्य हमारा ! वह कितना मधुर है !'

तब एक दूसरी गोपी बोली—'यदि वृन्दावनमें उत्पन्न पेड़-पौधोंका, पशु-पक्षियोंका तथा हमारा भी सौभाग्य इतना है तो इस वृन्दावनके सौभाग्यके बारेमें तो हम कह ही क्या सकती हैं ? सहस्रमुखवाला आदिशेष भी वृन्दावनकी महिमाका वर्णन नहीं कर सकता।'

तब एक गोपीने कहा—'आदिशेष वर्णन नहीं कर सकता तो भले ही न करे। मैं तो एक गीत सुनाऊँगी; सुन लो।' यह कहकर गाने लगी—

वृन्दावनं सखि भुवो वितनोति कीर्तिं
यद् देवकीसुतपदाम्बुजलब्धलक्ष्मि।
गोविन्दवेणुमनुमत्तमयूरनृत्यं
प्रेक्ष्याद्रिसान्वपरतान्यसमस्तसत्त्वम्॥
(श्रीमद्भागवत १०।२१।१०)

प्रिय सखि ! यह वृन्दावन इस भूलोककी कीर्तिको अभिवृद्ध करता है; क्योंकि भूलोकमें ही यह वृन्दावन है जो श्रीकृष्णके चरणकमलोंके चिह्नोंसे चिह्नित होकर सुशोभित है। यहाँ श्रीकृष्णकी मुरलीका ध्वनि सुनकर मयूरोंके झुंड मत्त होकर उसकी तालपर नाचने लगते हैं और इन मयूरोंका नृत्य देखकर पर्वतोंकी चोटियोंपर विचरनेवाले सभी पशु-पक्षी चित्रलिखित-से हो जाते हैं।

वस्तुतः नागलोकसे, स्वर्गलोकसे, सत्यलोकसे, श्रीवैकुण्ठ-धामसे ही क्यों, सभी लोकोंसे यह भूलोक सर्वश्रेष्ठ है; क्योंकि इस भूलोकमें ही वृन्दावन है, जो आज समस्त देवताओंको अपनी ओर आकृष्ट कर रहा है। अपने-अपने वास-स्थानोंको त्यागकर सभी देवतागण वृन्दावनमें आकर उसकी सुषमाश्री देखते रहते हैं। क्या इसकी सुषमा देखना कहें? नहीं, वे तो तरसते रहते हैं कि हम भी वृन्दावनमें कम-से-कम एक दूब बनकर रह सकते। क्यों ? साक्षात् ब्रह्माजीने भी क्या वृन्दावनमें एक दूबका जन्म लेनेकी इच्छा नहीं प्रकट की ? इसे समझनेमें बहुत समय नहीं लगेगा कि यह महिमा वृन्दावनको श्रीकृष्णसे प्राप्त हुई अथवा वृन्दावनकी महिमा देखकर श्रीकृष्ण स्वयं यहाँ आ पहुँचे ? श्रीकृष्णने जन्म तो लिया मथुरामें, परंतु वृन्दावन-का अन्वेषण करते हुए यहाँ आये। अतः यह महिमा वृन्दावनकी ही है। यह जान लो कि चाहे श्रीकृष्ण वृन्दावन छोड़कर मथुरा चले जायँ, किंतु गोपिकाएँ तब भी इसे न छोड़ेंगी। आगे चलकर जब श्रीकृष्ण मथुरा चले जायँगे, ये गोपिकाएँ जाकर उन्हें देखेंगी ही नहीं; क्योंकि गोपियोंका मन उन श्रीकृष्णसे आकृष्ट नहीं होता जो मथुरामें, द्वारकामें या हस्तिनापुरमें क्रीडा करते हैं। वे तो आदर दिखलायेंगी वृन्दावन-विहारी श्रीकृष्णके ही प्रति। गोविन्दके उत्कर्षका कारण यह है कि वह गोपियोंके आदर-सत्कारके पात्र रहे। यदि वे वृन्दावन नहीं आते, तो इन गोपियोंने उनका आदर न किया होगा। गोपियोंके कारण ही श्रीकृष्णको यह प्रसिद्धि प्राप्त हुई कि उनमें काष्ठा-प्राप्त सौलभ्य है। अतः वृन्दावनवाससे बढ़कर उत्कर्षदायक उनके लिये कुछ नहीं। इस प्रकार जो वृन्दावन अपनी महिमासे साक्षात् श्रीकृष्णको बड़प्पन—विशेष महत्त्व प्रदान करता, उनकी महिमाका वर्णन कोई क्या कर सकता है ? इस कारण हम वृन्दावनकी शोभाको सोच-सोचकर प्रसन्न हो सकती हैं। यदि कोई प्रश्न करे कि वृन्दावनकी अपनी यह शोभा कौन-सी है तो उसका यही उत्तर है कि वृन्दावनकी भूमिपरके सब स्थलोंमें श्रीकृष्ण-चरणोंकी छाप लगी हुई है।

वृषभानुपुरीके समीप कालिन्दीके तटपर एक बकुल (मौलसिरी) का वृक्ष है। राधाजी एक दिन अपनी सहेलियोंके साथ उसमें पुष्प-चयन करने गयीं। संध्याका समय है। अस्ताचलस्थ सूर्यकी स्वर्णिम किरणोंसे वृन्दावनकी शोभा शतगुणित हो गयी है। मन्द-मन्द वायु चल रही है। वृक्ष हिलते हैं और पुष्प गिर रहे हैं। गोपियाँ पुष्प चुन-चुनकर श्रीराधाजीके वस्त्राञ्चलमें डाल रही हैं। राधा भी अञ्चल पसारकर गिरे हुए पुष्पोंको झुक-झुककर चुनकर एकत्र कर रही हैं।

इतनेमें कहींसे वहाँ पहुँचे श्रीकृष्ण और लगे डाँटने—'कौन हो तुमलोग? यहाँ क्यों-कैसे आयीं? मर्यादाकी रक्षा करनी हो तो भाग जाओ।' यह कहते हुए वे उनके पास वेगसे आये। गोपियोंने भी अभिनय किया मानो वे भयभीत हैं और कहीं जाकर छिपनेवाली हैं। कुछ क्षणोंके बाद वे फिरसे पुष्प चुनने लगीं। नन्दकुमारने मुरली घुमाते हुए उनके पास आकर उन्हें धमकाया। गोपियोंने भी बालमृगियोंके समान दौड़ते उन्हें भयभीत दृष्टिसे देखा; पर श्रीराधाजी शीघ्रातिशीघ्र पुष्प चुनती रहीं। अब श्रीकृष्ण आये राधाके पास और उन्होंने उनके लँहगेको पकड़कर सारे पुष्प गिरा दिये। वे रो उठीं। श्रीकृष्णने उन्हें सान्त्वना देनेकी चेष्टा की। राधाने पूछा—'कितने परिश्रमसे मैंने पुष्प संगृहीत किये थे। सबको एक ही क्षणमें तुमने बिखरा दिया। क्या यह उचित है?' श्रीकृष्णने कहा—'यह उपवन मेरा है। इसमें इन सब बालाओंको लेकर तुम पुष्प चुराने आयीं! क्या यह न्याय-सम्मत है?' वाचाल राधाने प्रश्न किया—'क्या कहीं तुमने लिख रक्खा है कि यह तुम्हारा अपना उपवन है?' श्रीकृष्णने उत्तर दिया—'इसमें संदेह क्या है? अपने चरण-चिह्नोंसे सारे उपवनको मैंने मुद्राङ्कित किया है, देखो।' उसी क्षण सारी वनभूमि श्रीरासेश्वरीके नेत्रोंको श्रीहरिचरणाङ्कित दिखायी पड़ी। राधा आश्चर्यचकित रह गयीं। शरीरमें रोमाञ्च हो आया। नेत्रोंसे आँसू बहने लगे। हाथ जोड़ते हुए, प्रेमके प्रवाहसे गद्गद हो वे कहने लगीं—'रसिकेन्द्र! यह सारी व्रजभूमि तुम्हारी ही है। तुम्हीं युवराज हो, तुम निरङ्कुश राजा हो और यह सब तुम्हारी ही सम्पत्ति है। प्रियतम! यह सब ही क्यों, मैं और मेरी सहेलियाँ भी सब तुम्हारी अपनी ही हैं।'

यह सुनना था कि श्रीकृष्णके हर्षकी कोई सीमा ही न रही। प्रक्षिप्त पुष्पोंको स्वयं ही चुन-चुनकर उन्होंने राधाके आँचलको भर दिया और कहा—'अच्छा, अब जाओ। इसी प्रकार प्रतिदिन यहाँ आकर पुष्प चुनकर ले जाना।' राधा कुछ नहीं बोलीं, सिर नवाकर रह गयीं।

वृन्दावनकी यह कैसी दिव्य शोभा है! वृन्दावनका सारा प्रदेश श्रीकृष्णके चरण-कमलोंकी मुद्रासे समलंकृत है। इस वृन्दावनके कारण सारा भूमण्डल ही प्रसिद्ध हो गया। पुत्री सर्वोत्कृष्ट है तो वह भी उसको जन्म देनेवाली माताकी महिमा है। उसी प्रकार श्रेष्ठ पुत्ररूप वृन्दावन भूमिको भूदेवीने जन्म दिया तो वह भी भूमाताकी ही महिमा है। यदि कोई पुत्री अपने प्रेमसे पतिको वशमें कर लेती है तो माताके आनन्दकी सीमा ही नहीं रहती। इसी रीतिसे वृन्दावनने अपने प्रियतम श्रीकृष्णको वशमें कर लिया। इसे देखकर भूमाता प्रसन्न होती है।

एक बालिका अपने पतिके प्रेमकी पात्र बन जाती है तो इतनेसे उसको तृप्त नहीं होना चाहिये। उसको अपनी साससे भी अपनी प्रशंसा प्राप्त करनी चाहिये। इस वृन्दावन भूमिने श्रीकृष्णकी माता देवकीजीसे भी अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त की। देवकीजी कहती हैं कि 'मेरे लालके लिये मुझे क्या चिन्ता है; वृन्दावनमें वह सुखसे रहेगा।' यह सब है वृन्दावनका सौभाग्य। वृन्दावनमें पहुँचते ही श्रीकृष्णमें एक सुन्दर गति आ जाती है। राजकीय ठाटबाटके साथ चलनेवाले सम्राट्के समान श्रीकृष्ण मुरलीको हाथमें लेकर हाथ हिलाते हुए गजराजके समान यहाँ भ्रमण करते हैं।

बीचमें एक वटवृक्ष है, जो आकाशको स्पर्श करता-सा लगता है। उसके मूलमें एक पत्थर पड़ा था। श्रीकृष्ण वहाँ आकर उसपर बैठे। शीतल छाया थी; कुछ दूरपर मयूरगण चल-फिर रहे थे। विविध मृग घास चर रहे और खेल रहे थे। श्रीकृष्णने वृन्दावनकी, जो कि उनके अन्तःपुरके समान था, शोभा देखी और उसपर अभिमान करने लगे। उनके मनमें इच्छा हुई कि मैं एक विलक्षण गीत गाऊँ। झट मुरली उठायी और उसे अधरपर रक्खा। मधुर गीतका प्रारम्भ हुआ। पासके मोर श्रीकृष्णके समीप दौड़ आये और उनको घेरकर लगे शब्द करने और पंख फैलाकर नाचने। उनके पंख एक-दूसरेसे मिलकर एक दीवार-सी बन गये और श्रीकृष्ण उसमें छिप गये। दूसरे वन्य मृग

आदि इससे श्रीकृष्णको न देख सके और निराश हुए । हाँ, वे इन मोरोंको भगाकर श्रीकृष्णके पास आ सकते थे । परंतु श्रीकृष्ण इसे पसंद नहीं करेंगे । एकको दूर हटाकर उसके आनन्दको छीन लेना, यह तो स्वार्थ है । श्रीकृष्ण ऐसी स्वार्थपरतासे दूर रहते हैं । श्रीकृष्ण क्या, वृन्दावनवासियोंमें किसीको भी यह पता नहीं है कि स्वार्थ क्या होता है । यह देखकर कि मोर श्रीकृष्णको घेरकर प्यार दिखा रहे हैं, अन्य जन्तुओंको उनसे असूया या द्वेष नहीं । परंतु क्षणभर भी बिना श्रीकृष्णको देखे उनसे रहा नहीं जाता । मोरोंने भी ऐसा जानकर नहीं किया होगा; उनको याद न रहा होगा कि हम दूसरोंके नेत्रोंसे श्रीकृष्णको छिपा रहे हैं । याद न हो तो उनका क्या दोष है ?

पशुओंको एक उपाय सूझा । मृगराज बोल उठे— उधरके गोवर्धन गिरिपर चढ़कर वहाँसे हम नीचे देखें तो श्रीकृष्णके दर्शन हमें अच्छी तरह प्राप्त होंगे । बस, क्या था—शेर और बाघ, हाथी और भालू, हिरन और खरगोश, गाय और बैल,—सब-के-सब पर्वतपर चढ़ गये । उनके आनन्दका पार न रहा और सब ऊँचे स्वरसे बोल उठे । ऐसा लगा कि वे 'गोविन्द ! गोविन्द !' कह रहे हैं । सहसा उनके मनमें यह भाव आया—'हाय ! हमने तो बड़ी भारी भूल की; इस प्रकार शोर मचाकर क्या हमें श्रीकृष्णका मुरली-संगीत नहीं सुनना है ? बस, सब निःशब्द हो बैठ गये । मुँह हिला-हिलाकर सब श्रीकृष्णके गीतका रसास्वादन करने लगे । किसीने यह प्रश्न किया है कि गीतके रसास्वादन करनेके लिये मुँह हिलानेकी क्या आवश्यकता है ? 'मुरली-गान सुनकर जैसे हम तन्मय होकर मुँह हिलाती सब भूलकर बैठ जाती हैं, वैसे ही'—उत्तर दिया एक गोपीने ।

वेणुगीत—७

श्रीकृष्णके प्रति जिन्हें रति है, वे सारे प्रपञ्चको आनन्द-मय देखते हैं । उपनिषदोंमें 'मधुविद्या' नामक एक प्रकरण है । उसमें भी यही उपदेश दिया जाता है कि जो परमात्मका साक्षात्कार कर लेता है, उसको संसारकी सभी वस्तुएँ मधुर-ही-मधुर जान पड़ती हैं । श्रीकृष्ण-भक्ति सभी रसोंका आधार है । रसोंका आस्वादन करनेका ज्ञान भी भाग्यके अधीन है । परंतु सबके लिये सब रसोंके निदानभूत श्रीकृष्णको अनुभव करनेकी शक्ति प्राप्त करना उतना कठिन नहीं । श्रीकृष्णकी इच्छा हो तो पेड़-पौधोंको भी वे यह शक्ति दे देंगे; काठ-पत्थर-जैसी संज्ञाहीन वस्तुओंको भी चेतना देकर वे अपना अनुभव करा देंगे । क्या वृक्ष-जैसे पदार्थ भी उनको देखकर रोमाञ्चित नहीं हुए ? यदि अचेतनोंको भी वे यह अनुभव देते हैं, तो फिर चेतनायुक्त पशु-पक्षियोंके सम्बन्धमें तो कहना ही क्या ? जब शेर, बाघ, भालू आदि जंगली क्रूर पशु भी अपना निर्दय स्वभाव त्यागकर उनके साथ प्रेमका व्यवहार करने लगते हैं, तब साधु हिरनोंके सम्बन्धमें कहनेकी आवश्यकता ही क्या है ?

धन्याः स्म मूढमतयोऽपि हरिण्य एता
　या नन्दनन्दनमुपात्तविचित्रवेषम् ।
आकर्ण्य वेणुरणितं सहकृष्णसाराः
　पूजां दधुर्विरचितां प्रणयावलोकैः ॥
(श्रीमद्भा० १० । २१ । ११)

'इन हरिणियोंका सौभाग्य प्रशंसनीय है । यद्यपि वे ज्ञानहीन हैं, तथापि विचित्र सुन्दर वेशभूषालंकृत श्रीकृष्णका वेणुगान सुनकर ये अपने कृष्णसार पतियोंके साथ आकर अपने कमल-सदृश विशाल प्रेमपूर्ण नेत्ररूपी पुष्पोंसे श्रीनन्द-नन्दनको निरखती हुई उनकी पूजा करने लगती हैं ।'

विवेकरहित पशु होनेपर भी इन हरिणियोंका बड़ा भाग्य है ! हरी-भरी घाससे आच्छादित जंगली मैदानमें झुंड-की-झुंड घास चर रही हैं । सब मादा हिरन हैं । कुछ दूरपर मधुर मुरली बजाते हुए श्रीकृष्ण आते हैं, जो विचित्र आभूषणोंसे आभूषित हैं । उनके सौन्दर्यका तथा उनकी मुरली-माधुरीका अनुभव करनेकी इच्छासे सब मृगियाँ उनके पास दौड़ आयीं । ये तो पुरुषोत्तम हैं और वे स्त्री-हिरन । उनके पास आते ही उनमें भावावेशका स्फुरण हुआ । उस रसिकेन्द्रके समीप आनेमें लज्जाके कारण वे कुछ हिचकिचायीं, जो संसारके सभी जीवोंको अपने दर्शन-मात्रसे आनन्द देते हैं । सहसा वे वहाँसे भागकर पुरुष-हिरनोंके पास चली गयीं, जो कुछ दूरपर घास चर रहे थे और संकेतोंसे सूचित किया कि व्रजके युवराज उनके बीच आ गये हैं । यह जानते ही सब हिरनोंने घास चरना छोड़ दिया और एक ही छलाँगमें सब श्रीकृष्णके पास आकर उन्हींको टकटकी लगाये देखने लगे । तब हिरनियाँ अपने पतियोंके बगलमें आकर खड़ी हो गयीं और प्रेमसे श्रीकृष्णको देखने लगीं । इन मृगियोंका आचरण एक नागरिक स्त्रीके आचरणके जैसा है, जो अपने प्रियतमके एक मित्रको आता हुआ दूरसे देखती

हैं और झट अपने पतिको यह समाचार सुनाकर उसको भी अपने साथ लेकर बाहर आती हैं और उनके साथ ही आये हुए मित्रका स्वागत करके आदर-सत्कार करती हैं।

गृहस्थ-धर्मका लक्ष्य ही श्रीकृष्ण-रतिका अनुभव करना है। इन पुरुष और स्त्री-हिरनोंके आचरणसे यह प्रतीत होता है कि परिशुद्ध प्रेममय दाम्पत्यजीवन व्यतीत करनेवाले सती-पतियोंका लक्ष्य यही रहता है कि पारस्परिक प्रेमको श्रीकृष्णमय बनाना। पशु होनेपर भी इन हिरनोंमें इतनी नागरिकता थी। अन्ततः नागरशिरोमणि गिरिधर गोपालका अनुभव करना ही तो नागरिकताका लक्षण है।

कृष्णं निरीक्ष्य वनितोत्सवरूपशीलं
श्रुत्वा च तत्क्वणितवेणुविचित्रगीतम्।
देव्यो विमानगतयः स्मरनुन्नसारा
भ्रश्यत्प्रसूनकबरा मुमुहुर्विनीव्यः॥
(श्रीमद्भागवत १०। २१। १२)

'अरी सखी! हरिनियोंकी तो बात ही क्या है— युवतियोंको आनन्द प्रदान करनेवाले श्रीकृष्णका रूप-सौन्दर्य और शील देखकर तथा उनके बजाये हुए विचित्र मुरलीके संगीतको सुनकर, विमानोंपर अपने-अपने प्रियतमोंके साथ उड़ती हुई सुर-देवियाँ मुग्ध हो जाती हैं। वे अधीर हो जाती हैं। उनको पता भी नहीं लगता और उनके केशोंमें गुँथे हुए पुष्प पृथ्वीपर बिखर जाते हैं और उनके वस्त्र भी कटिसे खिसक जाते हैं।'

यह बात नहीं कि पेड़-पौधे अचेतन और पशु-पक्षी विवेकहीन थे; ये भी श्रीकृष्ण-रसका अनुभव करते हैं। रसज्ञ देवरमणियाँ और गन्धर्वरमणियाँ भी श्रीकृष्णका रूप-सौन्दर्य देखकर मुग्ध हो गयीं। दिव्य विमानोंमें बैठकर वे पुण्यतीर्थोंमें जलक्रीडा करने जा रही थीं; आकाशमार्गमें सुगन्धित वायुके साथ-साथ श्रीकृष्णका मुरली-गान भी तैरता हुआ जा पहुँचा। ज्यों ही इन्होंने गानामृतका पान किया, वे अपने पतियोंको, जो आगे-आगे जा रहे थे, भूल गयीं और वृन्दावन-भूमिमें उतरकर श्रीकृष्णके दर्शन करने लगीं और श्रीकृष्णको देखते ही उनके मनमें उनके प्रति प्रेमका उदय हो आया। वे नेत्रोंको खोलकर निर्निमेष उनके सौन्दर्यका पान करने लगीं। उनकी दशा अनिर्वचनीय थी। वे अद्भुत वेणुगीत सुनकर चकित रह गयीं। निरन्तर देखनेपर भी श्रीकृष्णका रूप-सौन्दर्य उन्हें अपूर्व लगता था और वे उसे देखकर हर्षोन्मादिनी हो उठीं। उनको यह भी पता नहीं रहा कि केशपाशोंकी तथा वस्त्रोंकी गाँठें खुल गयी हैं। उन्होंने तो श्रीकृष्णके दर्शनका अपूर्व आनन्द प्राप्त किया। क्या ऐसा दर्शनानन्द पर्याप्त नहीं? एक गोपी इस प्रकार वर्णन कर रही थी कि एक और गोपी बात काटकर बोली—

गावश्च कृष्णमुखनिर्गतवेणुगीत-
पीयूषमुत्तभितकर्णपुटैः पिबन्त्यः।
शावाः स्नुतस्तनपयःकवलाः स्म तस्थु-
र्गोविन्दमात्मनि दृशाश्रुकलाः स्पृशन्त्यः॥
(श्रीमद्भागवत १०। २१। १३)

'अरी, उन सुर-सुन्दरियोंकी बात छोड़ो। देखो—श्रीकृष्णके अधरसे मुरलीकी संगीत-ध्वनि निकलती है, तब वृन्दावनमें चरनेवाली गायें उस अमृत-तुल्य गानप्रवाहको अपने कान सीधा करके पीने लगती हैं और बछड़े, जो गायोंके थनसे दूध पी रहे हैं, वंशीध्वनि सुनते ही उसे छोड़कर यों ही रह जाते हैं और अन्य बछड़े जो घास चर रहे हैं वे भी मुँहकी घास मुँहमें ही रखे मुरलीध्वनि सुनने लगते हैं। उन सबकी आँखोंमें आनन्दके आँसू बहने लगते हैं; क्योंकि वे आनन्दकंद श्रीकृष्णका अपनी आत्मामें ही स्पर्श पाते हैं।'

गोकुलके गोसमूह और बछड़े, जो श्रीकृष्णके स्पर्शसे ही वर्धित होते थे, हाथी-जैसे दीखते हैं। उनके शरीरोंकी हड्डियाँ दिखायी नहीं देतीं। जब गायें चलती हैं, उनके बड़े-बड़े थनोंसे दूध अपने-आप टपकने लगता है। जबसे गोकुलमें श्रीकृष्ण आये, कोई भी बछड़ोंको बाँधता न था। गायोंके साथ-साथ बछड़े भी चलेंगे और चलते-चलते दूध पियेंगे। समय मिलनेपर श्रीकृष्ण भी गायोंके थनोंसे स्वयं दूध पी लेते हैं। इस प्रकार बछड़ोंके और श्रीकृष्णके पीनेके बाद भी थनोंमें अत्यधिक दूध बच रहता है। गोपियोंके दुहनेके अनन्तर भी थन भरे ही रहते हैं। दूध सर्वदा उत्पन्न होता रहता है।

गायोंकी ऐसी शक्ति और महिमा घास चरनेसे नहीं प्राप्त हुई; क्योंकि श्रीकृष्णके रहते वे घास कहाँ चरने जातीं? प्रातःकाल होते ही यदि श्रीकृष्ण न आये तो वे हुंकारने लगती हैं। इसका कारण है, उनकी श्रीकृष्णको देखनेकी प्रबल इच्छा, न कि जंगल जाकर घास चरनेकी। ज्यों ही श्रीकृष्णने गोशालामें प्रवेश किया, त्यों ही वे 'हंबा-हंबा' शब्द करके उनका स्वागत करती हैं, मानो सखा-सखा कहकर बुला रही हों। उनके पास जाकर श्रीकृष्ण उनका बन्धन खोल देते हैं, तब भी वे आगे भाग नहीं जातीं। जहाँ-जहाँ श्रीकृष्ण जाते हैं वहाँ-वहाँ वे भी जाती हैं और उनको घेरकर खड़ी हो जाती हैं। गायोंको आगे छोड़कर उनको

हाँकते हुए पीछे-पीछे जाना, यह तो श्रीकृष्णका स्वभाव नहीं। वे आगे-आगे वेणु बजाते चलते हैं और ये उनके पीछे पीछे चलती हैं।

वृन्दावन पहुँचकर श्रीकृष्ण गायोंको एक हरे-भरे मैदानमें घास चरने छोड़ देते हैं और स्वयं गोप-मित्रोंके साथ एक वृक्षके नीचे खेलते रहते हैं। मैदानमें हरी-हरी घास अच्छी तरह उगी हुई है। परंतु गायोंकी दृष्टि उस ओर नहीं जाती। श्रीकृष्ण वहाँ एक वृक्षसे पीठ लगाकर खड़े होकर वेणु बजाते हैं। उनका एक चरण भूमिपर रहेगा और दूसरा ऊपर उठा रहता है। उनके चरणका सुन्दर तल देखकर गायें एक-एक करके उनके पीछेसे आती हैं और अपनी जीभसे चाटने लगती हैं। बैल दूरसे अपनी प्रियतमा गायोंको ऐसा करते हुए देखते हैं। क्या श्रीकृष्णके चरणकी धूलिपर उनको प्रेम नहीं? पर वे पास नहीं आते; क्योंकि गायोंके श्रीकृष्णानुभवमें विघ्न डालना वे नहीं चाहते।

परंतु क्या उन्हें श्रीकृष्णके स्पर्शानुभवका साधन प्राप्त है? उधर यमुनाजीमें एक घाट है, जहाँ श्रीकृष्ण आकर उतरते हैं। इस घाटमें काली-काली मिट्टी है। उसपर श्रीकृष्णके नूपुरोंके चिह्न दिखायी देते हैं। उन्हें देखते ही बैल मुँह सीधा करके पूँछ उठाकर वहाँ दौड़ आते हैं। अपने सींगोंसे उस काली मिट्टीको उठाकर अपने सिरोंपर डालते हैं। हर्षसे चारों ओर दौड़ते हैं। ब्रह्मादि देवगणोंको तथा ऋषि-मुनिजनोंको भी दुर्लभ श्रीकृष्णकी चरण-रेणु बैलोंके सींगोंपर विराजती है। वेदोंके शिरोभूत उपनिषदोंमें जाकर ढूँढ़नेपर भी जो अप्राप्य है, वह हरिचरणरेणु गायोंका शिरोभूषण बनकर शोभा देती है। विष्णुके चरणोंकी प्राप्तिकी इच्छा रखनेवाले मुमुक्षु इसे देखकर कदाचित् इस निश्चयपर आयेंगे कि वेदोंसे भी बढ़कर ये बैल परमात्माकी चरण-धूलि-प्राप्त महाभाग्यवान् हैं।

श्रीकृष्णकी मुरलीका गान-प्रवाह बढ़ता है। गौएँ अपने कानरूपी दोनोंसे ग्रहणकर उसे यथेष्ट पी लेती हैं और अपनेको भूलकर मूर्ति-जैसी स्थिर हो जाती हैं। मुँहके अंदर पड़ी घासको चबाकर निगलनेकी याद भी उन्हें नहीं। वे ज्यों-की-त्यों खड़ी रह जाती हैं। घास गायोंके मुँहसे लटकती रहती है। जब गौएँ गानामृत पीने लगती हैं, तब वे देवामृतकी भी उपेक्षा करनेके लिये तैयार हो जाती हैं। जो पैर फैलाकर, पूँछ हिलाकर और सिरसे टकरा-टकराकर बहुत चावसे माँका दूध पीते हैं, वे बछड़े भी मुरली-गान सुनकर दूध पीना भूलकर चित्र-लिखितसे रह जाते हैं। उनके मुँहसे दूध बहता रहता है। अपने वत्सकी श्रीकृष्ण-भक्ति देखकर, माता धेनु प्रहृष्ट होकर आनन्दसे आँसू बहाने लगती है। पशुओंकी इस प्रेम-भक्तिके परवश होकर यशोदानन्दन उनके हृदयमें दृढ़ रहकर सर्वदा आनन्द देते रहते हैं।

कहा जाता है कि कई मुनिजन वृन्दावन जाकर इस इच्छासे तपस्या कर रहे थे कि जैसे ध्रुवने अपनी तपस्यासे परमात्माका साक्षात्कार किया, वैसे ही हम भी इस यमुनावनमें घोर तपस्या करके इसी जन्ममें परमात्माका साक्षात्कार करें। सत्य तो यह है कि बदरीवन, दण्डकारण्य, नैमिषारण्य आदि वन ही तपस्याके स्थान हैं। ऐसे स्थानोंपर तपस्या करनेका फल वृन्दावनमें नित्यवास प्राप्त करना है। कहनेका तात्पर्य यह है कि वृन्दावन भोग-भूमि है; फलानुभव करनेका स्थान है, न कि कर्मभूमि और पुण्य कमानेका स्थान। वृन्दावनमें वास करनेका सौभाग्य जिन्हें प्राप्त है, वे सभी पहले ही तपस्या कर चुके हैं। स्वयं श्रीकृष्णका भोग्य बनकर रहना और श्रीकृष्णका अनुभव स्वयं करना, इसे छोड़कर वृन्दावनवासियोंका कोई भी दूसरा लक्ष्य नहीं। बेचारे मुनिजन तो रसतत्त्वका यह रहस्य समझ ही नहीं सकते। इसलिये उन्होंने निश्चय किया कि यहाँ तपस्या करके अवश्य हम ईश्वरको प्राप्त करेंगे। ऐसी धर्मशालामें, जहाँ भोजन बिना मूल्य बाँटा जाता है, आकर उपवास करनेवाले हैं ये मुनिजन। इनकी दयनीय दशा देखकर भगवान्‌की इनपर कृपा हुई। एक दिन मुनिजन अपने-अपने साधनमें लगे हुए थे—कुछ जप करते तो कुछ योग करते थे। कुछ याग करते थे तो कुछ आँखें बंदकर ध्यान-रत थे। उनको यह ज्ञान नहीं था कि जिस तत्त्वकी प्राप्तिके लिये वे साधनानुष्ठान कर रहे हैं, वही तत्त्व यहाँ आकर गौएँ चराता फिरता है। वे नटवर मधुर वेणुगान करते हुए उस प्रदेशसे निकलते हैं। उनके वेणुगानसे इनका ध्यान-भङ्ग होता है। फिर भी ध्यानमें लगे रहनेका इन्होंने प्रयत्न किया। परंतु मन एकाग्र न हुआ और वह मधुर वेणुगानकी ओर जाकर उसमें लीन हो गया। एक मुनिने कहा—'अरे, यहाँ आकर वेणुगान करनेवाला यह कौन है? हमारे ध्यानमें बड़ी बाधा पड़ती है।' दूसरे एक मुनिने कहा—'कोई गन्धर्व होगा। नहीं, इतनी माधुरीसे कोई दूसरा इस प्रकार गा नहीं सकता।' एक ऋषि चिढ़कर बोले—'कोई भी हो। इस स्थानमें इसका क्या काम है। जहाँ

ऋषि-महात्मा तपस्या कर रहे हैं ?' सब मुनिजन इस निश्चय-पर आये कि हम अपने शिष्योंको भेजकर उसे आज्ञा देंगे कि तू यह स्थान छोड़कर चला जा। कुछ शिष्योंको भेजा भी। वे श्रीकृष्णके पास गये और कुछ समयके बाद लौटकर बोले—

'वह न तो देव है, न गन्धर्व। एक नन्हा-सा लड़का है, जो करोड़ों मन्मथके समान रूपवान् है और गौएँ चराता इधर-उधर फिर रहा है। उसका रंग नील मेघका-सा है। कनकाम्बरधारी है। उसके वक्षःस्थलपर वनमाला शोभायमान है। उसके कटाक्ष-वीक्षणमें, गजराजकी-सी गतिमें, मन्मथको जीतनेवाले सौन्दर्यमें, प्रेम-भरे सुन्दर वदनमें, मुरलीसंगीतमें अपने मनको खोकर बहुत-सी बालिकाएँ उसे घेरे हुए हैं। देखनेमें तो वह राजकुमार-सा लगता है। परंतु बिना गर्वके सरलतासे व्यवहार करता है।'

तब मुनिजन बोले—'रहने दो। क्या तुमलोगोंने उससे कहा कि 'इस स्थानको छोड़कर चले जाओ!' इसका क्या उत्तर दिया उसने ?' वे बोले—'वह बात तो हम भूल गये। उसे देखते ही हमें इस भुवनका स्मरण ही न रहा। कुछ ही समय उसके पास रहनेपर भी मनमें बड़ा आनन्द होता है।' तब मुनियोंने कहा—'अच्छा, तब हम ही चलें।' बस, मुनिजन श्रीकृष्णको देखने निकले। तब श्रीकृष्ण क्या कर रहे थे ? पासमें एक गाय बड़े प्रेमसे खड़ी है। उसके शरीरपर पीठ लगाकर बड़े आरामसे वह चितचोर वेणु बजा रहा है, जो मुनियोंके मनको भी मुग्ध करता था। उसका सौन्दर्य, गान करनेका रोचक ढंग, मधुर गान, बीच-बीचमें गोपियोंके प्रति सप्रेम कटाक्ष,—ये सब देखकर मुनिजन लुब्ध-मुग्ध हो गये और उसको यह कहनेका साहस उन्हें न हुआ कि 'तू इधर न आना।' वह कुछ समयतक मुरली बजाता रहा और फिर चला गया। वह अनोखा मुरलीमनोहर जाते-जाते इन मुनियोंके नियमों और अनुष्ठानों-को भी अपने साथ ले गया। उसके चले जानेके अनन्तर बहुत समय बीतनेपर ही इनको स्मरण आया कि हम अपने नियमोंको भूलकर इतने समयतक वेणुगीत सुन रहे थे और वे बहुत दुखी हुए। उन्हें दुःख तो हुआ, परंतु साथ-साथ उनके हृदयमें उस सौन्दर्य-सागरको निरन्तर देखनेकी लालसा अदम्यरूपसे बढ़ती गयी।

वेणुगीत—६

दूसरे दिन भी श्रीकृष्ण आये। उनको देखकर आज मुनिजन सिर हिला-हिलाकर हँस रहे हैं और आपसमें चर्चा कर रहे हैं, उनके रूपका रसानुभव करते हैं। वे उनसे यह कहना भूल ही गये कि 'हमारी तपस्यामें बाधा न डालना।' पिछले दिनकी तरह आज भी उनकी सारी तपस्या नष्ट हुई। उनका मन चुराकर वे श्यामसुन्दर चितचोर निकल गये। रातभर मुनिजन उन्हींके बारेमें बातें करते रहे। दूसरे दिन प्रातःकाल यह निश्चय करके बैठे कि 'उसके आनेके पहिले ही हम अपने अनुष्ठानोंको समाप्त कर लेंगे।' वे बैठे तो ध्यानके लिये। परंतु निर्गुण एवं निराकार वस्तुमें उनका मन नहीं लगा। बस, मुरलीधर गोपाल ही उनके मनमें प्रवेश करके बड़ी मधुरताका अनुभव करा रहे थे। वे सोचने लगे—'यह कैसी माया है ? पत्नी-पुत्र, घर-द्वार सब त्यागकर हम तपोवनमें तपस्या करने आये, परंतु इस बालककी आसक्तिमें फँस गये। इसका सङ्ग हम छोड़ नहीं सकते। आखिर यह बालक कौन है, जिसने हमें इस प्रकार असमञ्जसमें डाल दिया है। हमने तो खूब धोखा खाया।' यह सोचकर वे गहरी साँस लेने लगे। पर उनको भी तो दिव्य ज्ञान था, इसलिये पहिचान लेनेमें उन्हें देर न लगी। उन्होंने समझ लिया कि जिसकी खोजमें वे तत्पर हैं, वही उनको ढूँढ़ते हुए बालकरूपमें आया है। फिर तो, वे निरन्तर उसीका ध्यान करते हुए इधर-उधर फिरने लगे।

अब श्रीकृष्णके आते ही ऋषिगण उसे देखने आये। परंतु वह तो बालिकाओंके बीचमें बैठकर मुरली-स्वर-सुधाकी वर्षा कर रहा था। मुनिजनोंको बैठनेका स्थान ही नहीं प्राप्त हुआ, तो भी वे जहाँ-तहाँ बैठ गये। मुनियोंको देखकर गोपिकाएँ एक दूसरीकी ओर कनखियोंसे देखकर मुस्कुरायीं। वे सोचती थीं—ये तो संसारको अनित्य मानकर उसे विरसताकी दृष्टिसे देखनेवाले हैं। हमारा श्याम तो सारे संसारको अपनी लीलाका पात्र बनाकर और उसे नित्य बनाकर सरसतासे उसे देखनेवाला रसिक है। अतः हमारे श्रीकृष्णमें और इन मुनिजनोंमें कितना अन्तर है! ये जो सबसे विरक्त रहते हैं, श्रीकृष्णमात्रमें रत होकर आये हैं। हमारे-जैसे रसिक ही इसको समझ सकते हैं, न कि ब्रह्मादि देवतागण अथवा ऋषिगण। मुनिजनोंने भी गोपाङ्गनाओंको देखा। यह निश्चय करके कि हमारे सम्बन्धमें ये बालिकाएँ कुछ भी कहें या समझें, वे वहाँ आकर जमकर बैठ गये। प्रतिदिन ऐसा ही होता रहा। अब ये ऋषि-लोग तप नहीं करते। श्रीकृष्ण-सम्बन्धी बातें करना,

श्रीकृष्णको देखना, श्रीकृष्णका ध्यान करना, श्रीकृष्ण-सम्बन्धी गान करना, श्रीकृष्णके साथ रहना और श्रीकृष्ण-का मुरली-गान सुनना—यही उनका एकमात्र काम हो गया है । सहसा उनके मनमें एक चिन्ता उत्पन्न हुई । अज्ञताके कारण हम तो तपस्या कर चुके । इस तपस्याके फलस्वरूप कदाचित् भगवान् श्रीकृष्ण हमें स्वर्ग दे देंगे तो क्या करेंगे ? वृन्दावनमें ही हमें नित्यनिवास प्राप्त हो जाय तो कितना आनन्द हो ! इसके लिये हम क्या करें ? जो तपस्या हमने की है, उसके फलमें यदि हम दूसरा कोई वर माँग लें तो स्वर्ग जानेकी आवश्यकता ही नहीं रहेगी ।'

यह थी उनकी विचारधारा । उन्होंने निश्चय किया कि 'आज हम श्रीकृष्णसे वर अवश्य माँगेंगे । वह वर यह है कि इसी वृन्दावनमें हमें पशु-पक्षी या घास-फूस आदि किसी-न-किसी रूपमें जन्म मिल जाय । पक्षीका जन्म ही सबसे बढ़कर है; क्योंकि श्रीकृष्णका मुरली-गान सुनने जायँ तो गोपियोंके बीचमें हमें स्थान नहीं मिलता । पक्षी बन जायँ तो वृक्षोंपर बैठकर गान भी सुनेंगे और श्रीकृष्णके रूप-सौन्दर्यका दर्शन भी करेंगे ।'

प्रायो बताम्ब विहगा मुनयो वनेऽस्मिन्
कृष्णेक्षितं तदुदितं कलवेणुगीतम् ।
आरुह्य ये द्रुमभुजान् रुचिरप्रवालान्
शृण्वन्त्यमीलितदृशो विगतान्यवाचः ॥

(श्रीमद्भा० १० । २१ । १४)

'आश्चर्यकी बात है ! इस वृन्दावनके प्रायः सभी पक्षी श्रेष्ठ ऋषि ही हैं जो मनोहर कोंपलोंवाली घने वृक्षोंकी शाखाओंपर बैठकर खुले नेत्रों निर्निमेषदृष्टिसे श्रीकृष्णकी सुन्दर रूपमाधुरी तथा प्रेमभरी चितवनको देख रहे हैं और दूसरे सब प्रकारके शब्दोंको छोड़कर केवल श्रीकृष्णकी ही सुधामधुर वाणी और मुरलीके भुवनमोहन संगीतको सुनते रहते हैं ।'

[शेष आगे]

गायत्रीका तात्त्विक विवेचन

['गायत्री-हृदय']

(लेखक—श्रीयुत रामस्वरूपजी शास्त्री 'अमर' धर्मशास्त्र-पुराणेतिहासायुर्वेदाचार्य)

इस संसारमें शास्त्रों, शास्त्रकारों आदिने शब्दको ब्रह्मका स्वरूप मानकर 'शब्द-ब्रह्म' नामसे अभिहित किया है । तभी कहा गया है—

एकः शब्दः सुप्रयुक्तः सम्यग्-ज्ञातः स्वर्गे लोके च कामधुग् भवति ।

एक शब्द सुप्रयुक्त होनेपर और अच्छी तरहसे जान लिये जानेपर स्वर्गमें और लोकमें भी कामदुहा धेनुकी भाँति कामनाएँ फलवती करनेवाला होता है । तभी शास्त्रोंमें 'शब्दो वै ब्रह्म' यह कहा गया है । किसी भी शब्दका सुप्रयोग सर्वानन्ददाता हो जाता है तथा कुप्रयोग महान् कष्टप्रद बन जाता है । शब्दको गिरा, वाणी, सरस्वतीके नामसे व्यवहृत किया जाता है । शब्दसे तन-मन-धनकी भी सुरक्षा प्रायः हो जाती है । तभी कहा है—'मर्मवाक्यमपि नोच्चरणीयम् ।'—हृदयभेदी शब्द नहीं बोलना चाहिये; क्योंकि हृदयभेदक शब्दोंका प्रभाव शरीरपर पड़ता है । शब्दका सुप्रभाव जीवनदाता एवं कुप्रभाव मरणप्रद हो जाता है । 'जीवन् नरो भद्रशतानि पश्येत्' जीवन धारण करनेसे मनुष्य सैकड़ों भलाइयाँ, कल्याणकारी सिद्धियाँ प्राप्त कर सकता है और देख सकता है । क्योंकि—

शरीरमाद्यं खलु सर्वसाधनम् ।

—सभी साधनोंका आदिकारण यह पाञ्चभौतिक शरीर बताया गया है । वाणीकी पवित्रताके हेतु मन्त्रका जप परमावश्यक होता है । मन्त्रकी शक्ति शब्दसे बलवत्तरा होकर अभिलषित सिद्धि देनेवाली एवं त्राण करनेवाली होती है । ऐसे मन्त्रोंमें गायत्री मन्त्रका विशेष महत्त्व है । 'गायन्तं त्रायते इति सा गायत्री ।' जो गानेवाले (जपनेवाले) साधकका परित्राण करती है, वही गायत्री है । गायत्रीके नियमित जपसे अनर्थ-नाश होकर आध्यात्मिक समुन्नति और सर्वार्थसिद्धि होती है । किंतु साधक जपकर्ताकी भावनाके अनुसार भी फलमें विभिन्नता आ जाती है । 'यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी ।' इसीको इस प्रकार कहा है—

न सूरत बुरी है, न सीरत बुरी है ।
अगर कुछ बुरा है तो नीयत बुरी है ॥

शब्द-शक्तिसे बड़े-बड़े अर्थ तथा अनर्थ भी बन जाते हैं। शब्दके प्रभावसे प्राणीमात्र प्रतिकूल अथवा अनुकूल बन जाता है। शब्दके सुप्रयोगसे शान्ति, सिद्धि, सुखकी समुपलब्धि एवं कुप्रयोगसे अशान्ति, द्वेष, दुःखकी सम्प्राप्ति होती है। शब्दके दुष्प्रयोगसे तो 'मौन' ही श्रेयस्कर होता है; क्योंकि **'मौनेन कलहो नास्ति'**—मौनमें कलह नहीं है। **'वचने का दरिद्रता'**—वचन (शब्द) के सुन्दर उच्चारणमें दरिद्रता कैसी ? शब्दका मूल्य कभी आँका ही नहीं जा सकता। अतः मानवमात्रको अपने शब्दको प्राणवान् बनानेकी चेष्टा निरन्तर ही करनी चाहिये। शब्दकी शक्ति बढ़ाने, बुद्धिकी वृद्धि, आध्यात्मिक समुन्नतिका सरल-सुखद साधन—'गायत्री' की उपासना है। किंतु यह गायत्री-उपासना दूसरेका अहित करनेके लिये भूलकर भी न करे। महापुरुष बताते हैं—

यान् यान् समीहते कामान्, तान् तान् प्राप्नोति मानवः।

'मनुष्य जिन-जिन कामनाओंको करता है, उन कामनाओं-की सफलता उसे इस गायत्रीमन्त्रकी महिमासे प्राप्त होती है।' परंतु यह गायत्री मन्त्र चाहे जिसको देना भी समुचित नहीं है, क्योंकि—

अप्रकाश्यमिदं गुह्यं न देयं यस्य कस्यचित्।
सुकुलीनाय शान्ताय ऋजवे दम्भवर्जिते।
दद्यान्मन्त्रमिदं पुण्यं सर्वकामफलप्रदम्॥

'यह मन्त्र अच्छे कुलवाले, शान्तचित्तवाले, सरल, अहंकारहीन पुरुषको देना चाहिये। यह मन्त्र परम पवित्र एवं सभी कामनाओंको सफल करनेवाला है।' इसके विषयमें कहा है—

यस्त्रिसंध्यं पठेन्मन्त्रं संवत्सरमतन्द्रितः।
स सिद्धिमाप्नुयादिष्टां दुर्लभामपि मानवैः॥

'एक वर्षतक पवित्र होकर जो तीनों काल जपता है, वह मनुष्योंसे भी दुर्लभ इष्टसिद्धिको पाता है।' गायत्री-मन्त्रके एक-एक शब्दमें अपार शक्ति, विपत्ति-नाशक प्रभाव है। गायत्रीमन्त्र-जापके लिये संकल्प तथा न्यास करनेकी परमावश्यकता है।

जब विपदाएँ घेर रही हों, सम्पदा पलायन करती जाती हो, शत्रु संहार करनेपर उतारू हों, अपना कोई न दिखायी देता हो, भला करते बुरा हो जाता हो, असफलताएँ सामने अहर्निश उपस्थित होती हों, तब परम पावन मन्त्र श्रीगायत्रीकी शरणमें जानेपर ही सुख, शान्ति तथा आनन्दकी उपलब्धि होती है। मनमें स्थिरता आती है।

अब यहाँ स्वमतिके अनुसार एवं एक प्राचीन हस्त-लिखित पुस्तिकाके आधारपर श्रीगायत्री माताके विषयमें कुछ लिखनेकी धृष्टता कर रहा हूँ। गायत्रीजीके ऋषि वसिष्ठ हैं। उन्हींके द्वारा श्रीब्रह्माजीसे श्रीगायत्रीका रहस्य ज्ञात हुआ, जो नीचे दिया जा रहा है। गायत्री (**ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्**) में कहा गया है—

'परमात्मा, पृथ्वी, आकाश तथा स्वर्ग, भगवान् श्री-सूर्यदेवका, उत्तम तेजवाले देवका ध्यान करता हूँ, जो हमारी बुद्धिको प्रेरित करें।' इन शब्दोंका शुद्ध, सूक्ष्म अर्थ ध्यानमें रखकर जप करनेसे शीघ्र ही सिद्धि मिलती है। श्रीउमोपनिषद्के 'ब्रह्मा-वसिष्ठ-संवादमें निर्देश है कि गायत्रीका एक-एक अक्षर इस लोकमें सुख-सिद्धि, समृद्धि तथा परलोकमें सद्गति और मुक्ति प्रदान करता है। भगवान् वसिष्ठने पूछा—

गायत्रीं नो ब्रूहि भगवन् ब्रह्मन् ब्रह्मतेजसा।

'हे भगवान् ब्रह्माजी! आप ब्रह्मतेजसे श्रीगायत्रीका तत्त्वार्थ बताकर कृतार्थ कीजिये।'

ब्रह्माजी बोले—**'ब्रह्मज्ञानी त्वमसि।'** तुम ब्रह्मज्ञानी हो। **प्रकृतिं (प्रकृतां) गायत्रीं व्याख्यास्यामः**—मैं ब्रह्मा गायत्रीकी व्याख्या करता हूँ।

'तमसः सा परा शक्तिः शुक्लवर्णा, महत्पूर्वा। सर्व-स्वरूपिणी चास्ति तस्यां समेत्य विलीयमानायाः सृष्टेर्लीला समभवत्। तथा तमसः शक्तिपरः शुक्लवर्णो महानपूर्वः सर्वस्वरूपी स आसीत्। तस्याङ्गुल्यामेत्य मानात्सलिल-मभवत्। सलिलात्फेनमभवत्। फेनाद् बुद्बुदोऽभवत्। बुद्बुदादण्डोऽभवत्। अण्डाद् ब्रह्माभवत्। ब्रह्मणोऽ-ग्निरभवत्। अग्नेर्वायुरभवत्। वायोरोंकारोऽभवत्। ओंकाराद् हृत्यभवत्। हृत्या समभवद् व्याहृतिर्व्याहृत्या गायत्रीः, गायत्र्या सावित्री समभवत्। सावित्र्या अभवत् सरस्वती। सरस्वत्या वेदाः समभवन्। वेदेभ्यः क्रियाः प्रवर्तन्ते।

वह शक्ति तमसे परे है, शुक्लवर्णा, महत्पूर्वा है। सर्व-स्वरूपिणी है। उसी शक्तिमें आकर सब विलीन होते हैं

और सृष्टिकी लीला होती है। वह परमात्मा सर्वशक्तिमान्, तमसे परे है, शुक्लवर्ण है, महान्से भी महान्, अपूर्व है। सबमें रहनेवाला सर्वस्वरूपी है। उसके इङ्गितको पाकर सलिलकी उत्पत्ति हुई। सलिलसे फेन, फेनसे बुद्बुद उत्पन्न हुआ। बुद्बुदसे अण्ड और अण्डसे ब्रह्माकी उत्पत्ति हुई। ब्रह्मासे अग्नि हुई और अग्निसे वायुकी उत्पत्ति हुई। वायुसे ओंकार, ओंकारसे हृति, हृतिसे व्याहृति, व्याहृतिसे गायत्री, गायत्रीसे सावित्री तथा सावित्रीसे सरस्वती, सरस्वतीसे वेद हुए तथा वेदोंसे सभी क्रियाएँ प्रवर्तित हुईं।'

फिर वसिष्ठजीने पूछा—**का व्याहृतिः का च गायत्री?** व्याहृति क्या है और गायत्री क्या है?'

ब्रह्माजी बोले—'**ॐ भूः, ॐ भुवः, ॐ स्वः, ॐ महः, ॐ जनः, ॐ तपः, ॐ सत्यम्। ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि, धियो यो नः प्रचोदयात्" ॐ। एषा गायत्री।**

'**ॐ भूः, ॐ भुवः, ॐ स्वः, ॐ महः, ॐ जनः, ॐ तपः, ॐ सत्यम्, ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।**" यह गायत्री है।

वसिष्ठने पुनः पूछा—

किं भूः? किं भुवः? किं स्वः? किं महः? किं जनः? किं तपः? किं सत्यम्? किं तत्? किं सवितुः? किं वरेण्यम्? किं भर्गः? किं देवस्य? किं धीमहि? किं धियः? किं यः? किं नः? किं प्रचोदयात्?

वसिष्ठजी बोले—क्या भूः है? क्या भुवः है? क्या स्वः है? क्या महः है? क्या जनः है? क्या तपः है? क्या सत्यं है? क्या तत् है? क्या सवितुः है? क्या वरेण्यम् है? क्या भर्गः है? क्या देवस्य है? क्या धीमहि है? क्या धियः है? क्या यः (यो) है? क्या नः है और क्या प्रचोदयात् है?

ब्रह्माजी बोले—

भूरिति भूलोकः। भुव इति भुवर्लोकः। स्वरिति स्वर्गलोकः। मह इति महर्लोकः। जन इति जनलोकः। तप इति तपोलोकः। सत्यमिति सत्यलोकः। भूर्भुवःस्वरिति त्रैलोक्यम्। तदिति तदस्यैतत्तेजः। सवितुरिति सविता आदित्यः। वरेण्यमिति नन्नं वा अन्नमिति प्रजापतिः। भर्ग इति आपो वै भर्गः, देवस्येत्यतीन्द्रियो वै देवाय द्रव्यं तद्द्रव्यं तस्मात् पुरुषो नाम रुद्रः धीमहि इति परमात्मनि ध्यानं तत्परं मे पदं ध्यायेम, यो धीमयः परमात्मा सदाशिवः पुरुषो धियः इति प्रज्ञाः, नः इति अस्मान् सुधर्मा, प्रचोदयात् इति प्रेरयेत् तस्मादयमेव परमो धर्मः—इत्येषा गायत्री किं गोत्रा?

'भूः यह भूलोक है; भुवः यह भुवर्लोक है। स्वः यह स्वर्गलोक है। महः यह महर्लोक है। जनः यह जनलोक है। तपः यह तपलोक है। सत्यं यह सत्यलोक है। भूर्भुवः स्वः ये तीनों लोकोंके बोधक हैं। तत् यह वही इसका तेज है। सवितुः यह सविता या आदित्य हैं। वरेण्यं यह अन्न (नन्न) हैं, जो प्रजापति भी हैं। भर्गः यह जल है। देवस्य यह इन्द्रियातीत पुरुष रुद्रदेव हैं। धीमहि यह परमात्मामें ध्यान करना, तत्परकपदका ध्यान करना है। धियः यह प्रज्ञा है। यो यह बुद्धिमय परमात्मा सदाशिव पुरुष है। नः यह हमलोगोंको सुधर्मा, प्रचोदयात् यह प्रेरणा करना है। उससे यही परम धर्म है।

यह परमधर्मस्वरूपी गायत्री किस गोत्रकी है?

कति अक्षराः, कति पदाः, कति कुक्षयः, किं लक्षणा? किं विचेष्टितम् किं मुद्राहृतम्?

गायत्री कितने अक्षरोंवाली है? कितने पद हैं? कितनी कुक्षि हैं? क्या लक्षण हैं? क्या चेष्टा है? क्या मुद्राहृति है?

सांख्यायनगोत्रा। चतुर्विंशत्यक्षरा। षट्कुक्षिः। शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं ज्योतिषमिति पञ्चशीर्षा। ऋग्-यजुः-साम इति पादत्रयम्। पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणदिशाद्यावा-पृथिव्यौ षट् कुक्षयः। प्रबन्धकल्पनाकथाप्रवल्लिकाप्रहेलिका इति पञ्चलक्षणम्। मीमांसान्यायधर्मशास्त्राणि विचेष्टितम्। गायत्र्युष्णिगनुष्टुब्ब्राह्मीपंक्तित्रिष्टुब्जगत्यः छन्दांसि। अग्निरिति मुद्राहृतम् (हृतिर्वा)।

गायत्रीजी सांख्यायन गोत्रा हैं। चौबीस अक्षरोंकी हैं। पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण दिशाएँ तथा पृथ्वी, आकाश—ये छः कुक्षि हैं। पाँच सिर—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त और ज्योतिष हैं। ऋग्, यजुः, सामवेद—ये तीन पाद हैं। प्रबन्ध, कल्पना, कथा, प्रवल्लिका, प्रहेलिका—ये पाँच लक्षण हैं। मीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र—यह चेष्टा है। गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, ब्राह्मी, पंक्ति, त्रिष्टुप्, जगती छन्द हैं। अग्नि यह मुद्राहृति है।

वसिष्ठने पूछा—

गायत्र्याः के वर्णाः ? के स्वराः ? कानि नामानि ? कानि अक्षरदैवतानि ?

गायत्रीका क्या वर्ण है ? क्या स्वर है ? कौन नाम और अक्षर-देवता हैं ?

ब्रह्मोवाच

प्रातःकाले रक्तवर्णा, कुमारी दण्डकमण्डलुधारिणी, रक्तकुण्डलाक्षमालाधरा, हंसवाहिनी, आहवनीयवह्निस्वरूपा, रजोगुणयुक्ता, भूलोकव्यवस्थिता, ब्रह्मदैवत्या, ऋग्वेदसंहिता, आदित्यपथगामिनी ।

मध्याह्ने श्वेतवर्णा, त्रिशूलधारिणी, यौवनस्था, त्रिनेत्रा, वृषारूढा, तमोगुणस्वरूपा, गार्हपत्याग्निस्वरूपा, भुवर्लोकव्यवस्थिता, यजुर्वेदसंहिता, रुद्रदैवत्या, आदित्यपथगामिनी ।

सायंकाले वृद्धा, कृष्णवर्णा, पीतवस्त्रा, चतुर्भुजा, शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म-धारिणी, गरुडारूढा, सत्त्वगुणस्वरूपा, दक्षिणाग्निस्वरूपा, स्वर्गलोकव्यवस्थिता, सामवेदसंहिता, ब्रह्मदैवत्या, आदित्यपथगामिनी ।

ब्रह्माजी बोले—गायत्री प्रातःकालमें रक्तवर्णा कुमारी हैं । दण्डकमण्डलुधारिणी, रक्तकुण्डल-अक्षमाला पहिननेवाली, हंसवाहिनी, आहवनीय वह्निके स्वरूपवाली, रजोगुणयुक्ता, भूलोकमें रहनेवाली, ब्रह्मदैवत्या, ऋग्वेदसंहितावाली तथा आकाशमार्गगामिनी हैं ।

मध्याह्न (दोपहर) के समय श्वेतवर्णकी, त्रिशूलधारिणी, यौवनकी अवस्थावाली, तीन नेत्रोंवाली, बैलपर चढ़ी हुई, तमोगुणी स्वरूपवाली, गार्हपत्याग्निस्वरूपा, भुवर्लोकमें रहनेवाली, यजुर्वेदसंहितावाली, रुद्रदैवत्या तथा आदित्यपथगामिनी हैं ।

सायंकालमें बूढ़ी हैं । कृष्णवर्णवाली हैं, पीतवस्त्र पहिने हैं, चार भुजावाली हैं । शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मको धारण किये हैं । गरुड़पर बैठी हैं । सत्त्वगुणस्वरूपा हैं । दक्षिणाग्निके रूपवाली और स्वर्गलोकमें व्यवस्थित हैं । सामवेदसंहिता, ब्रह्मदैवत्या तथा आदित्यपथगामिनी हैं ।

षड्ज-मध्यम-गान्धार-त्रिस्वरा । अक्षरदैवतानि—प्रथमाग्निदैवतम् । द्वितीयं प्रजापतिदैवतम् । तृतीयं सोमदैवतम् । चतुर्थमीशानदैवतम् । पञ्चममादित्यदैवतम् । षष्ठं बर्हिषदैवतम् । सप्तमं मित्रदैवतम् । अष्टमं भगवदैवतम् । नवममर्यमादैवतम् । दशमं सावित्रदैवतम् । एकादशं विश्वकर्मदैवतम् । द्वादशं पुरदैवतम् । त्रयोदशमश्विनीकुमारदैवतम् । चतुर्दशं वायुदैवतम् । पञ्चदशं रामदैवतम् । षोडशं मैत्रावरुणदैवतम् । सप्तदशं त्र्याग्निदैवतम् । अष्टादशं विश्वेदेवादैवतम् । ऊनविंशं विष्णुदैवतम् । विंशं चन्द्रदैवतम् । एकविंशं रुद्रदैवतम् । द्वाविंशं कुबेरदैवतम् । त्रयोविंशमश्विनीकुमारदैवतम् । चतुर्विंशं विष्णुदैवतम् ।

अर्थ—षड्ज, मध्यम, गान्धार—ये तीन स्वर हैं तथा चौबीस अक्षरोंके देवता निम्न प्रकार हैं—प्रथमाक्षरके अग्नि, द्वितीयके प्रजापति, तृतीयके सोम, चतुर्थके ईशान, पञ्चमके आदित्य, छठेके बर्हिष्, सातवेंके मित्र, आठवेंके भगवत्, नवमके अर्यमा, दसवेंके सावित्र, ग्यारहवेंके विश्वकर्मा, बारहवेंके पुर, तेरहवेंके अश्विनीकुमार, चौदहवेंके वायु, पंद्रहवेंके राम, सोलहवेंके मैत्रावरुण, सत्रहवेंके त्र्याग्नि, अठारहवेंके विश्वेदेवा, उन्नीसवेंके विष्णु, बीसवेंके चन्द्र, इक्कीसवेंके रुद्र तथा बाईसवेंके कुबेर, तेईसवेंके अश्विनीकुमार और चौबीसवेंके विष्णु देवता हैं ।

अथ ध्यानम्

मस्तके ब्रह्मा । हृदि विष्णुः । ललाटे रुद्राः । केशे मेघाः । चक्षुषोश्चन्द्रादित्यौ । कर्णयोः शुक्रबृहस्पती । नासिकयोरश्विनीकुमारौ । बाह्वोर्लोकपालाः । स्तने धर्मः । नाभौ नभः । कराविन्द्रियाणि । जघने प्रजापतिः । ऊर्वोः कैलासमलयौ । जानुनि विश्वेदेवाः । गुल्फयोः पितरः । पादे पृथ्वी । रोमावलिषु वृक्षौषधयः । अस्थिषु ग्रहा मासा ऋतवः । एवं संध्याद्वयमुन्मेषनिमेषौ अहोरात्रे, एवंरूपां सर्वचरणां मुक्तिप्रदां सहस्रनेत्रां गायत्रीं शरणमहं प्रपद्ये ।

मस्तकमें ब्रह्मा, हृदयमें विष्णु, ललाटमें द्र, बालोंमें मेघ, आँखोंमें सूर्य-चन्द्रमा, कानोंमें शुक्र और बृहस्पति, नासाछिद्रोंमें अश्विनीकुमार, बाहुओंमें लोकपाल, स्तनोंमें धर्म, नाभिमें आकाश आदि, जघनोंमें प्रजापति, ऊरुमें कैलास और मलयपर्वत, जानुओंमें विश्वेदेव, गुल्फोंमें पितर, पैरोंमें पृथिवी, रोमावलियोंमें वृक्ष और ओषधियाँ, जिनकी हड्डियोंमें सभी ग्रह, मास और ऋतुएँ निवास करती हैं । इस प्रकार दोनों संध्याएँ एवं रात-दिन उन्मेष-निमेष हैं । इस प्रकारकी सर्वचरणा, मुक्ति देनेवाली, सहस्र नेत्रोंवाली श्रीगायत्री माताकी मैं शरणमें हूँ ।

एतन्मे हृदयं संततं मातर्नित्यं भवति, तत्सवितुः, हृदयाय नमः । तस्मादापो वसिष्ठाय नमः । गायत्रीहृदयमिदं

नित्यं यो ब्राह्मणः पाठकः तस्य षष्टिसहस्राधिकलक्षत्रय-फलं भवेत् । स सर्वतीर्थस्नातो भवति । सर्वदेवज्ञातो भवति । ब्रह्महत्यामुक्तो भवति । अपेयपानात्यक्तो भवति । अभक्ष्यभक्षणात् पूतो भवति । अगम्यागमनात्पूतो भवति । पंक्तिसहस्राधिकदोषमुक्तो भवति । अष्टौ ब्राह्मणान् गृहीत्वा ब्रह्मलोकं स गच्छति ।

'हे माता गायत्री ! यह मेरा हृदय नम्र होता है । तत्सवितुः—इससे हृदयको नमस्कार है । उससे आप (जल) रूपी वसिष्ठजीको नमस्कार है । जो ब्राह्मण इस गायत्री हृदयका नित्य पाठ करता है, वह तीन लाख साठ हजार गायत्रीजापका फल पाता है, उसे सब तीर्थोंके स्नान करनेका फल मिल जाता है । वह देवताओंको जान लेता है । ब्रह्महत्यासे छूट जाता है । अपेय (सुरादि) पानके पापसे मुक्त हो जाता है । अगम्या (गुरुपत्नी आदि) के गमनके पापसे शुद्ध (निर्दोष) हो जाता है । हजारोंसे भी अधिक पंक्तियोंमें भोजन करनेके दोषसे मुक्त हो जाता है और आठ ब्राह्मणोंको लेकर वह ब्रह्मलोकको जाता है ।

ओंकारस्य रूपं श्वेतं च पीतं च लोहितं, चक्षुषा च कृतं पापमोंकारो दहति क्षणात् ।'

'ओंकार'का रूप सफेद, पीला और लोहित (लाल) वर्णका है, नेत्रोंसे किये हुए पापका ओंकार क्षणभरमें नाश कर देता है ।

तत्कारं श्वेतवर्णं च ब्रह्मवसिष्ठादिभिः सदार्चितम् ।
ब्रह्महत्याकृतं पापं तत्कारो दहति क्षणात् ॥

'तत्'कार श्वेतवर्ण है और ब्रह्मा, वसिष्ठ आदिसे सदा पूजा गया है । यह तत्कार क्षणभरमें ही ब्रह्महत्याके पापको जला देता है ।

सकारं श्वेतवर्णं च केशवेन सदार्चितम् ।
गोहत्यादिकृतं पापं सकारो दहति क्षणात् ॥

सकारका श्वेतवर्ण है और सदा केशवसे अर्चित है । यह 'स'कार गोहत्या आदिके रूपमें किये हुए पापका शीघ्र नाश करता है ।

विकारो लोहितं वर्णं शंकरेण सदार्चितम् ।
स्त्रीहत्याजनितं पापं विकारो दहति क्षणात् ॥

'वि'कारका वर्ण लोहित है और सदा शंकरजीसे पूजित है । यह विकार क्षणभरमें स्त्री-हत्यासे जनित पापका नाश करता है ।

तुकारं स्वर्णवर्णं च वासुदेवेन पूजितम् ।
लिङ्गदोषकृतं पापं तुकारो दहति क्षणात् ॥

'तु'कारको स्वर्णवर्ण और वासुदेवसे पूजित बताया गया है । यह तुकार लिङ्गदोषकृत पापका तत्क्षण नाश करता है ।

वँकारं घृतवर्णं च गणेशेन सदार्चितम् ।
मद्यपानकृतं पापं वँकारो दहति क्षणात् ॥

'वँ'कारका घृत-सा वर्ण है या घृतवर्ण है और सदा श्रीगणेशजीसे पूजित है । यह वँकार मद्यपानसे उत्पन्न हुए पापको क्षणभरमें नाश करता है ।

रेकारं रक्तवर्णं च श्रीसूर्येण सदार्चितम् ।
अगम्यागमनात्पापं रेकारो दहति क्षणात् ॥

'रे'कारको रक्तवर्ण और श्रीसूर्यदेवसे सदा ही अर्चित बताया है । यह रेकार क्षणभरमें अगम्य स्त्रियोंसे गमन करनेके पापको जला देता है ।

ण्यकारं क्षीरवर्णं च पार्वत्या च सदार्चितम् ।
अभक्ष्यभक्षणात्पापं ण्यकारो दहति क्षणात् ॥

'ण्य'कार दुग्धवर्णका है और पार्वतीजीसे सदा पूजित है । यह अभक्ष्य पदार्थोंके खानेसे हुए पापका शीघ्र ही नाश करता है ।

भकारं केतुवर्णं च ब्रह्मणापि सदार्चितम् ।
संसर्गजनितं पापं भकारो दहति क्षणात् ॥

'भ'कार केतुवर्णका है, ब्रह्माजीसे सदा ही अर्चित है । यह भकार संसर्गजनित पापका शीघ्र ही विनाश करता है ।

र्गोकारं कज्जलाभं च सुराचार्येण पूजितम् ।
गुरुनिन्दाकृतं पापं र्गोकारो दहति क्षणात् ॥

'र्गो'कार कज्जल वर्णका है और सुराचार्यसे पूजित है । यह गुरुनिन्दाजन्य पापका क्षणभरमें ही नाश करता है ।

देकारं मालतीवर्णं शंकरेण सदार्चितम् ।
भ्रातृवधकृतं पापं देकारो दहति क्षणात् ॥

'दे'कार मालती-वर्णका है और सदा श्रीशंकरजीसे पूजित है । यह देकार भाईके मारनेके किये हुए पापको क्षणभरमें दहन कर देता है ।

वकारं मधुवर्णं च धरणीधरपूजितम् ।
शूद्रान्नभक्षणात्पापं वकारो दहति क्षणात् ॥

'व'कार मधुवर्णका है और शेषनागसे पूजित है । यह वकार क्षणभरमें शूद्रोंके अन्न खानेसे जनित पापका नाश करता है ।

स्यकारं श्यामवर्णं च गणेशेन सदार्चितम् ।
पशुहत्याकृतं पापं स्यकारो दहति क्षणात् ॥

'स्य'कार श्यामवर्णका है और गणेशजीसे पूजित है। यह स्यकार पशुहत्यासे जनित पापका क्षणभरमें नाश करता है।

धीकारं मेघवर्णं च देवताभिः सदार्चितम्।
बुद्धिदोषकृतं पापं धीकारो दहति क्षणात्॥

'धी'कार मेघवर्णका है और सदा देवताओंसे अर्चित है। यह धीकार बुद्धिदोषजन्य पापसे क्षणभरमें मुक्त कर देता है।

मकारं श्यामवर्णं च प्रद्युम्नेन सदार्चितम्।
मिथ्यावादकृतं पापं मकारो दहति क्षणात्॥

'म'कार श्यामवर्णका है और प्रद्युम्नजीसे सदा पूजित है। यह मकार झूठ बोलनेके पापसे क्षणभरमें छुड़ा देता है।

हिकारं तामसं वर्णं मुनीनामपि पूजितम्।
कर्महानिकृतं पापं हिकारो दहति क्षणात्॥

'हि'कार तामसवर्णका है और मुनियोंद्वारा पूजित है। यह हिकार कर्मोंकी हानिसे समुत्पन्न पापका क्षणभरमें नाश करता है।

धिकारं पाण्डुवर्णं च धीमतामपि पूजितम्।
प्रतिग्रहकृतं पापं धिकारो दहति क्षणात्॥

'धि'कार पाण्डुवर्णका है। यह बुद्धिमानोंद्वारा पूजित है। प्रतिग्रहजनित पापोंका धिकार क्षणभरमें नाश करता है।

योकारं तिलवर्णं च योगिभिश्च सदार्चितम्।
कामेन च कृतं पापं योकारो दहति क्षणात्॥

योकारका तिल-जैसा वर्ण है और सदा योगियोंसे अर्चित है। यह योकार कामद्वारा कृत पापको क्षणभरमें नाश करता है।

योकारं श्यामवर्णं च नीलकण्ठेन पूजितम्।
कुत्सानिन्दाकृतं पापं योकारो दहति क्षणात्॥

यह द्वितीय योकार श्यामवर्ण है और नीलकण्ठद्वारा पूजित है। यह योकार कुत्सा-निन्दादिजन्य पापका क्षणभरमें नाश करता है।

नःकारं श्वेतवर्णं च शंकरेण सदार्चितम्।
जलपानकृतं पापं नःकारो दहति क्षणात्॥

'नः'कार श्वेतवर्णका है और सदा ही शिवजीद्वारा अर्चित है। यह नःकार जलपानसे किये पापको क्षणभरमें जला देता है।

प्रकारं हिङ्गुलीवर्णं मन्मथेन सदार्चितम्।
अन्नदोषकृतं पापं प्रकारो दहति क्षणात्॥

'प्र'कार हिङ्गुलीवर्णका है और मन्मथद्वारा सर्वदा पूजित है। यह प्र-कार क्षणभरमें अन्नदोषजन्य पापको विनष्ट करता है।

चोकारं सिन्धुवर्णं च मध्वरिणा सुपूजितम्।
सर्वेन्द्रियकृतं पापं चोकारो दहति क्षणात्॥

'चो'कार सिन्धुवर्णका है और मधुसूदन भगवान्से सुपूजित है। यह चोकार क्षणमात्रमें ही इन्द्रियोंद्वारा किये गये पापका नाश करता है।

दकारं जम्बुवर्णं च शम्भुनापि सदार्चितम्।
नानादोषकृतं पापं दकारो दहति क्षणात्॥

'द'कारका जामुनके फल-सा वर्ण है और यह शम्भुद्वारा सदा पूजित है। यह दकार नानादोषजनित पापका शीघ्र ही नाश करता है।

यात्कारं बिम्बवर्णं च शंकरेण सदार्चितम्।
जन्मजन्मकृतं पापं यात्कारो दहति क्षणात्॥

'यात्'कार बिम्बवर्णका है और शंकरजीद्वारा सतत अर्चित है। यह यात्कार क्षणभरमें जन्म-जन्मोंके पापोंका नाश कर देता है।

इति श्रीगायत्रीहृदयं ज्ञात्वा गोविन्देन प्रकीर्तितम्।
इह लोके सुखं भुक्त्वा विष्णुलोकं स गच्छति॥

इत्युमोपनिषदः शिरोभागे ब्रह्मवसिष्ठसंवादे गायत्रीहृदयं समाप्तम्।

श्रीगोविन्दजीके गाये हुए इस गायत्रीहृदयको जाननेवाला पुरुष इस लोकमें सुख भोगकर इस विष्णुलोकको प्राप्त होता है।

उमोपनिषद्के शिरोभागमें वर्णित श्रीब्रह्मा एवं वसिष्ठजीके संवादमें कथित गायत्रीहृदय सम्पूर्ण हुआ।

इस गायत्री-विवेचनावर्णित श्रीगायत्रीहृदयमें हस्तलिखित प्राचीन प्रतिलिपिसे यथेष्ट अशुद्धियोंको शुद्ध करनेपर भी प्रायः कुछ अशुद्धियाँ रह गयी होंगी। उन्हें अधिकारी विद्वान् तथा श्रीगायत्री माता क्षमा करें और वर्तमान प्रमादोंके दूर करनेका पुनः सुअवसर दें। श्रीमाता गायत्रीकी अनुकम्पासे बड़े-बड़े दुस्तर संकट मिटते हैं और जन्मान्तरकी दीनताका भी विनाश होता है। गायत्री-भक्तका कभी विनाश नहीं होता है। गायत्रीमातामें सभी देवोंका निवास है और यह तापत्रय-विनाशिनी शक्ति है।

'मैं' कौन हूँ ?

(लेखक—श्रीयुत अर्जुनशरणप्रसादजी एम्० ए०, साहित्यरत्न)

'मैं' कौन हूँ ? कहाँसे आया और क्यों आया ? किसने मुझे दुनियामें भेजा ? मुझसे कुछ पूछातक नहीं, उसने मुझे इतना निरुपाय समझा। फिर कौन मुझे उस पार बुला लेता है ? मेरी इच्छा और अनिच्छाका कोई प्रश्न ही नहीं। यह तो मुझपर सरासर अन्याय है।

'मैं' सृष्टिका सर्वोच्च प्राणी मानव हूँ—विधाताकी सर्वोत्तम कृति ! जल-स्थल, सचर-अचर सभी—मेरी आज्ञाका लोहा मानते हैं। संसारके समस्त जीव मेरे अनुचर हैं। मेरे वायुयान आसमानको लाँघते हुए समय और दूरीको प्रायः समाप्त कर चुके हैं। मेरे जलयान समुद्रकी उत्ताल तरंगोंको चीरते हुए सागरके एक ओरसे दूसरे छोरतक परिक्रमा करते हैं। मेरे राकेट अब चाँदपर पहुँचनेवाले ही हैं। मङ्गल-ग्रहपर मेरा आवास अब बनने ही जा रहा है। कुछ वर्षोंके उपरान्त मैं छुट्टी बिताने चाँदपर ही जाया करूँगा।

—यह तो ठीक है। किंतु निद्रा आनेपर मैं अपनी सुध-बुध खो बैठता हूँ। शरीर तो जहाँ-का-तहाँ पड़ा रहता है, इस स्थितिमें आ जाता है कि इसके बगलमें आग जल रही है या सर्प रेंग रहा है—इसका भी इसे पता नहीं चलता। किंतु उस समय 'मैं' कहाँ चला जाता हूँ ? क्या यह शरीर ही 'मैं' हूँ ? मूर्च्छा आनेपर अपनी चेतना खो देता हूँ। क्लोरोफार्म सुँघाकर जब डाक्टर मेरे शरीरपर शल्य-क्रिया करता है, हाथ-पैर काटकर अलग कर देता है तो मुझे उस समय पता भी नहीं चलता कि मेरे शरीरपर क्या बीत रही है। और मृत्युमें तो शरीर निश्चेष्ट पड़ा रह जाता है; लेकिन 'मैं' कौन ऐसी सत्ता हूँ, जिसके निकल जानेसे मेरा यह शरीर मृत्तिकावत् पड़ा रह जाता है। 'मैं' शरीर कैसे हूँ ? निश्चय ही मैं शरीर नहीं हूँ। शरीर हो ही नहीं सकता !

और मेरा यह गर्व झूठा है कि मैं सृष्टिका सर्वश्रेष्ठ प्राणी हूँ। क्रोध आनेपर मैं खूँखार बन जाता हूँ। कामके वशीभूत होकर जानवरसे भी बुरा आचरण करने लगता हूँ, ईर्ष्याके कारण अपने भाईकी गर्दनपर छूरी चलानेसे भी नहीं हिचकता। मैं सृष्टिका सर्वोच्च प्राणी हो ही नहीं सकता। क्या सृष्टिका सर्वोच्च प्राणी इसी प्रकार आचरण करता है ? मुझसे तो जानवर कई मानेमें अच्छे हैं।

'मैं' दुबला हूँ, 'मैं' मोटा हूँ, 'मैं' धनी हूँ, 'मैं' गरीब हूँ—इन वाक्योंसे स्पष्ट हो जाता है कि 'मैं' केवल शरीर हूँ। शरीरसे भिन्न मेरी क्या हस्ती हो सकती है ?

एक बारका प्रसङ्ग है कि श्रीअरविन्द लेटे हुए थे। उन्होंने अपने हाथ-पैर कड़े कर लिये। श्वासकी क्रिया थोड़ी देरके लिये बंद कर ली और सोचने लगे—'ठीक है, 'मैं' मर गया हूँ, लोग मेरे शरीरको जलानेके लिये श्मशानघाट लिये जा रहे हैं, लेकिन उस स्थितिमें भी तो 'मैं' हूँ। शरीर न रहनेपर भी 'मैं' का नाश नहीं हुआ। कहा जाता है कि इसी 'मैं' पर उन्होंने मनन करना शुरू किया और वे उच्च कोटिकी आध्यात्मिक प्रज्ञामें पहुँचनेमें समर्थ हो सके।

तो तथ्य यह है कि 'मैं' शरीर नहीं हूँ। 'मैं' आत्मा हूँ। बात ऐसी है कि कभी-कभी अज्ञानके कारण आत्मा अपनेको शरीरसे भिन्न नहीं मानती। अविद्याके कारण आत्मा शरीरके साथ अपनेको सम्बन्धित कर लेती है। इसलिये हमलोग कहते हैं—'मैं मोटा हूँ। मैं छोटा हूँ।' उस समय ऐसा लगता है मानो इस शरीरके अतिरिक्त आत्माकी कोई स्थिति है ही नहीं।

किंतु 'मैं' की स्थिति आत्मानुभूतिमें साबित हो जाती है। 'मैं' सुखी हूँ अथवा 'मैं' दुखी हूँ। इन वाक्योंसे ही आत्माकी स्थिति मालूम हो जाती है; क्योंकि जबतक 'मैं' की स्थिति नहीं रहती, उसके सुखी अथवा दुखी रहनेका सवाल ही नहीं उठता। उपनिषदोंका कथन है—आत्माके लिये ही सब प्रिय होता है। जगत्में सबसे प्यारी वस्तु यही आत्मा है, जिसके लिये सभी मनुष्य विषय-सुखकी अभिलाषा रखते हैं। हम स्त्री तथा पुत्रसे इसी आत्माके लिये प्रेम करते हैं। याज्ञवल्क्य अपनी स्त्री मैत्रेयीको समझाते हैं—'मनुष्य किसी व्यक्ति या वस्तुको आत्मवत् जानकर ही प्रेम करता है। कोई वस्तु स्वतः प्रिय नहीं है। पत्नी इसलिये प्यारी नहीं होती कि वह पत्नी है। पति इसलिये प्यारा नहीं होता कि वह पति है। पुत्र इसलिये प्रिय नहीं होता कि वह पुत्र है। धन भी स्वतः धनके लिये नहीं चाहा जाता। वे सब आत्माके लिये ही प्रिय होते हैं।'

तो यह स्पष्ट है कि 'मैं' शरीर नहीं, बल्कि शरीरी हूँ। शरीर रथ है; 'मैं' रथी हूँ। 'मैं' अमर हूँ, शरीर मरणधर्मा है। 'मैं' प्रकाश-पुत्र हूँ, शरीर इस ग्रहकी धूल है। शरीरकी मृत्यु मेरी मृत्यु नहीं है। मुझे न तो शस्त्र काट सकता है, न आग जला सकती है, न पानी भिगो सकता है और न हवा ही मुझे सुखा सकती है। यह शरीर मेरा परिधान मात्र है। जीर्ण हो जानेपर उतार देते हैं इसे और दूसरा धारण कर लेते हैं। ऐसे-ऐसे क्या जाने कितने शरीरोंको मैं धारण कर चुका हूँ और न जाने अभी कितने धारण करने पड़ेंगे। भगवान् बुद्धने कहा था—'तुम इतनी बार मर चुके हो कि यदि उन हड्डियोंको इकट्ठा किया जाता तो उससे पर्वत बन जाता। जन्म-जन्मान्तरोंमें तुम इतना रोये हो कि उन आँसुओंको यदि इकट्ठा किया जाता तो समुद्र बन जाता। इसीसे स्थितिकी विभीषिकाका पता चलता है। मायावी वातावरणमें दुर्भाग्यवश मैं इस शरीरको ही अपना स्वरूप समझे हुए हूँ। आलोककी किरण रजःकणको अपना स्वरूप समझ रही है। आत्मस्वरूपकी कैसी कारुणिक विस्मृति है यह ?

तो क्या शरीर मुझे अकारण ही मिल गया ? नहीं। इस विश्वमें एक पत्ता भी अकारण नहीं हिलता। यह विश्व कार्य-कारण-शृङ्खलाओंका समूह है। मुझे इस दुनियामें घसीटकर लानेवाले तथा इस शरीरके साथ बन्धनमें बाँधनेवाले स्वयं मेरे अच्छे-बुरे कर्म हैं—अविद्या और तृष्णा हैं। वस्तुओंका वास्तविक ज्ञान न होनेके कारण 'मैं' जो भी कर्म करता हूँ, उससे संस्कारकी उत्पत्ति होती है। संसारकी वस्तुओंसे चिपटे एवं लिपटे रहने तथा उसके उपभोगकी लालसाका होना ही 'तृष्णा' है। इसी अविद्या और तृष्णाके कारण 'मैं' बार-बार शरीरके बन्धनमें बँधता हूँ। यदि इस जीवनमें कोई एक इच्छा अपूर्ण रह गयी तो उसकी तृप्तिके लिये दूसरा जन्म ग्रहण करना पड़ेगा और फिर दूसरे जन्ममें अतृप्त इच्छाओंकी पूर्तिके लिये तीसरा। इस तरह इच्छाओंका दमन ही निर्वाण अर्थात् जन्म-मरणसे छूटनेका मार्ग है। बौद्धलोग इसी द्रौपदीके चीर-सदृश इच्छाओंके समूहको तण्हा (तृष्णा) कहते हैं और ये ही अतृप्त इच्छाएँ 'मैं' को सर्वदा शरीरके बन्धनमें बाँधे रखती हैं। इसलिये बुद्धने कहा था कि 'तृष्णाओंका अन्त करो।' यही 'गहकारक' अर्थात् देह-रूपी घरको बनानेवाले हैं। भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—फलकी आशा छोड़कर—सिद्धि-असिद्धिमें सम होकर, फलको मुझपर छोड़कर निष्काम कर्म करो।

इस तरह सुख-दुःख, धन-सम्पत्ति, सांसारिक उपलब्धियों एवं ऐश्वर्योंकी प्राप्ति इत्यादि सभी मेरे पूर्वकर्मोंके फल-स्वरूप ही प्राप्त होते हैं और पूर्व जीवनोंकी अतृप्त इच्छाओंको ही मैं इस जन्ममें पूरा कर रहा हूँ। इस संसारमें कोई भी उद्योग, कोई भी शक्ति अथवा कोई भी पदार्थ व्यर्थ नहीं, शक्तिके दृढ़ आग्रह (Law of persistence of force), उद्यमके संरक्षण (Law of Conservation of Energy), पदार्थके अविनाशीपनके नियम (Law of the Indestructibility of Matter) हम सभी जगह लिपिबद्ध पाते हैं। इसी तरह मानसिक क्रियाशीलता तथा मानसिक उद्योग-शक्ति है, इसका भी नाश कैसे हो सकता है ! इस तरह पूर्वजीवनके कार्योंको मैंने संस्काररूपमें प्राप्त कर लिया है और तभी इस जीवनकी गाड़ीको आगे बढ़ा रहा हूँ।

तो मुझे उन जीवनोंकी स्मृतियाँ क्यों नहीं आतीं ? —इसी जीवनकी कितनी स्मृतियाँ अवशिष्ट हैं ? अधिक दूर जानेकी आवश्यकता नहीं। चार दिन पहले मैंने जितने भी कार्य किये हैं, क्या वे सब स्मरण हैं ? स्वप्नकी कितनी बातें याद रहती हैं ? किंतु इसका मतलब यह नहीं कि चार दिन पूर्व मैंने कोई कार्य ही नहीं किया था या कोई स्वप्न ही नहीं देखा था। उसी प्रकार पूर्व जीवनोंकी स्मृतियाँ भी हमारे साथ हैं—सारगर्भ रूपमें। प्रतिभा उसीका परिणाम है। अप्रज्ञात चेतनतामें केवल इसी जीवनकी अनुभूतियाँ नहीं, विगत जीवनोंकी अनुभूतियाँ भी सुरक्षित हैं। वे हमारी गति-विधियोंको संचालित भी करती हैं। लेकिन उनका स्पष्ट ज्ञान इस शरीरसे अलग हुए बिना सम्भव नहीं। अर्थात् वह योगबलके द्वारा ही सम्भव है।

तो यदि मैं पुनर्जन्म लेता हूँ तो क्या मेरी आत्माको दूसरे शरीरमें जानेके लिये काटना-छाँटना पड़ता है ? नहीं, ऐसी बात नहीं है। आत्माका कोई स्वरूप नहीं होता। जिस तरहसे अग्निका अपना कोई स्वरूप नहीं है, जिस वस्तुमें अग्नि प्रकट होती है, उस वस्तुका आकार ही अग्निका स्वरूप है, उसी प्रकार जिस शरीरमें आत्मा रहती है, उसी शरीरका स्वरूप और आकार आत्माका स्वरूप और आकार बन जाता है। हाथीके शरीरमें

आत्मा है तो आत्माका आकार हाथीका आकार है। यदि हाथीके शरीरसे निकलकर किसी छोटे जानवरके शरीरमें आत्माका प्रवेश हो जाय (पुनर्जन्मके सिद्धान्तके अनुसार) तो आत्माके आकारको काटना-छाँटना नहीं पड़ता; क्योंकि आत्माकी चेतनाका स्वरूप प्रकाश-जैसा है। किसी बड़े कमरेसे प्रकाशको लाकर किसी छोटे कमरेमें रक्खा जाय तो प्रकाशको काटना-छाँटना नहीं पड़ता। यही बात आत्माके साथ भी है।

तो मैं नित्य-शुद्ध-बुद्ध हूँ। पोखरेका गंदा जल अपनेको समुद्रसे अलग समझ रहा है। जिस दिन गर्मी पड़ी, पोखरेका जल भाफ बनकर ऊपर उठा और हवाके द्वारा उड़कर समुद्रमें पहुँच गया, उसी दिन वह समुद्र-रूप हो जायगा। मेरी आत्माका मैल (मायाका मल) जिस दिन धुल जायगा, वह ब्रह्म हो जायगी। इस ब्रह्मके साक्षात्कार अर्थात् आत्मदर्शनके लिये सत्यका बारंबार अनुशीलन करना होगा। सत्यका अनुभव होनेपर ही मैं संस्कारोंका नाश कर सकता हूँ। निष्काम कर्मके द्वारा किसी भी नये संस्कारकी उत्पत्तिको रोक सकता हूँ। सत्य ज्ञान प्राप्त हो जानेपर मुझे आध्यात्मिक गुरुका यह उपदेश मिलेगा—'तत्त्वमसि' तू ही ब्रह्म है। इस सत्यका अनुशीलन बहुत दिनोंतक करनेके पश्चात् जब मेरी समझमें यह आ जायगा कि ब्रह्म ही मात्र एक सत्ता है और जगत् मिथ्या है तो 'मैं' भी कहूँगा—'अहं ब्रह्मास्मि' अर्थात् मैं ही ब्रह्म हूँ; क्योंकि 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति।'

× × × ×

श्रीबगलामुखी देवीकी उपासना

(प्रेषक—ब्रह्मचारी श्रीपागलानन्दजी उपनाम पं० श्रीयज्ञदत्तजी शर्मा, वानप्रस्थी, वैद्य)

[उपासना-अङ्क पृष्ठ ५१० से आगे]

तर्पण-विधि

तदनन्तर तर्पण करे। मूलमन्त्रसे तीन बार प्राणायाम करके ऋष्यादिन्यास, करन्यास, षडङ्ग-न्यास तथा ध्यान करे। इसके बाद अपने सामने रक्खे हुए पात्रको मूलमन्त्र पढ़ते हुए जलसे भरे। फिर 'गङ्गे च यमुने चैव' इत्यादि पढ़कर उसमें तीर्थोंका आवाहन करे। तत्पश्चात् उस जलमें देवीका आवाहन करके धेनु मुद्राद्वारा उसका अमृतीकरण करे। फिर मूलमन्त्रसे उसका अभिमन्त्रण एवं गन्धादिद्वारा पूजन करके उस जलसे बगलामुखीका तर्पण करे। तर्पण करते समय यह मन्त्र पढ़े—'ॐ ह्रीं बगलामुखि सर्व-दुष्टानां वाचं मुखं पदं स्तम्भय जिह्वां कीलय कीलय बुद्धिं विनाशय ह्रीं ॐ साङ्गां सपरिवारां सवाहनां सायुधां स-शक्तिकां परशिवेन सहितां श्रीमद्बगलामुखीं तर्पयामि।'

इस तरह दस बार देवीका तर्पण करके प्रत्येक आवरण-देवताका एक-एक बार तर्पण करे। फिर संहारमुद्राद्वारा अपने हृदयमें देवीका विसर्जन करे।

पूजा-गृहके द्वार-देवताओंका पूजन

इस प्रकार तर्पण करनेके पश्चात् स्तोत्रपाठ करते हुए पूजा-गृहके समीप आये। सामान्य अर्घ्य-जल लेकर मूलमन्त्रसे अभिमन्त्रणपूर्वक उसकी शुद्धि करके उस जलसे पूजागृहके द्वारोंका सम्प्रोक्षण करे और द्वार-देवताओंकी पूजा करे। पूर्वदिशामें स्थित द्वारके उभय पार्श्वमें क्रमशः **'ॐ गं गणपतये नमः, क्षं क्षेत्रपालाय नमः'**—इन दो मन्त्रोंसे गणपति एवं क्षेत्रपालकी अर्चना करे। फिर दक्षिण द्वारके उभय पार्श्वमें क्रमशः **'वं वटुकाय नमः' 'यां योगिनीभ्यो नमः'** इन मन्त्रोंसे वटुकभैरव तथा योगिनियोंकी पूजा करे। तत्पश्चात् पश्चिम द्वारपर क्रमशः दायें-बायें पार्श्वमें गङ्गा और यमुनाकी पूजा करे। इनके पूजनके मन्त्र इस प्रकार हैं—**'गां गङ्गायै नमः'** एवं **'यां यमुनायै नमः'** अन्तमें उत्तर द्वारपर क्रमशः दायें-बायें पार्श्वमें लक्ष्मी तथा सरस्वतीकी पूजा करे। पूजन-मन्त्र इस प्रकार हैं—

'श्रीं लक्ष्म्यै नमः' तथा 'ऐं सरस्वत्यै नमः'

पूजा-गृहके भीतर पूजन और आसन-ग्रहण

इस प्रकार पूर्वादि चारों द्वारोंपर इन सबका पूजन करनेके पश्चात् तीन बार ताली बजाकर पूजागृहका द्वार खोले और बायाँ अङ्ग सिकोड़कर पहले दाहिना पैर आगे बढ़ाते हुए घरमें प्रवेश करे। जहाँ आसन बिछाना हो, वहाँकी भूमिपर त्रिकोण अङ्कित करके उसपर सुन्दर आसन (चित्रासन) बिछाये। इसके बाद आग्नेय आदि चार कोणोंमें क्रमशः गणपति, क्षेत्रपाल, दुर्गा तथा सरस्वती देवीका पूजन करे। इनकी पूजाके मन्त्र क्रमशः इस प्रकार हैं—'गं गणपतये नमः' 'क्षं क्षेत्रपालाय नमः' 'दुं दुर्गायै नमः' 'सं सरस्वत्यै नमः'।

तदनन्तर मण्डपके मध्यभागमें भूमिपर 'ॐ ह्रीं आधारशक्तिकमलासनाय नमः' इस मन्त्रसे पूजा करके पृथ्वी देवीसे प्रार्थना करे। पहले निम्नाङ्कित वाक्य पढ़कर आसन ग्रहण करनेके निमित्त विनियोग करे—

'ॐ पृथ्वीति मन्त्रस्य मेरुपृष्ठऋषिः सुतलं छन्दः कूर्मो देवता आसने विनियोगः।

फिर नीचे लिखा मन्त्र पढ़कर पृथ्वी देवीसे आसनको पवित्र करनेके लिये प्रार्थना करे—

ॐ पृथ्वि त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता।
त्वं च धारय मां देवि पवित्रं कुरु चासनम्॥

—इसे पढ़कर आसनका गन्ध-पुष्पसे पूजन करके उसके ऊपर वीरासन आदिसे बैठे। तदनन्तर भूतोंका उत्सारण करे (उन्हें भगाये)। इसकी विधि इस प्रकार है—

भूतोत्सारण

पीली सरसों और अक्षत आदि लेकर निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़ते हुए उसे सम्पूर्ण दिशाओंमें बिखेरे—

ॐ अपक्रामन्तु ते भूता ये भूता भूतले स्थिताः।
ये भूता विघ्नकर्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया॥
अपक्रामन्तु भूतानि पिशाचाः सर्वतोदिशम्।
सर्वेषामविरोधेन पूजाकर्म समारभे॥

ॐ सर्वविघ्नानुत्सारयोत्सारय हुं फट् स्वाहा।

इस मन्त्रसे सरसों आदि चारों तरफ बिखेरकर बाँये पैरसे पृथ्वीपर आघात करे और तीन बार हाथोंसे ताली बजाये। फिर 'ॐ अस्त्राय फट्' इस मन्त्रको बोलते हुए दसों दिशाओंकी ओर एक-एक करके दस बार चुटकी आदि बजाये और दिव्य दृष्टिसे अवलोकनपूर्वक विघ्नोंका उत्सारण करनेके पश्चात् दीपनाथ एवं भैरवकी अनुज्ञाके लिये प्रार्थना करे—

दीपनाथ एवं भैरवकी अनुज्ञा-प्रार्थना

निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़कर दीपनाथ एवं भैरवसे पूजन-कर्मकी निर्विघ्न-सफलताके लिये प्रार्थना करे—अनुमति माँगे—

अस्मिन्क्षेत्रे दीपनाथ निर्विघ्नसिद्धिहेतवे।
श्रीचक्रक्रमपूजार्थमनुज्ञा दीयतां मयि॥
तीक्ष्णदंष्ट्र महाकाय कल्पान्तदहनोपम।
भैरवाय नमस्तुभ्यमनुज्ञां दातुमर्हसि॥

इस प्रकार अनुज्ञा-प्रार्थना करके समया ग्रहण करे।

समया-विधान

उसमें सबसे पहले ऋष्यादिन्यास, करन्यास और षडङ्ग-न्यास करके समया (पात्रविशेष) को बाँये हाथमें रक्खे और दाहिने हाथसे ढककर मूल-मन्त्रसे सात बार उसका अभिमन्त्रण करे। तत्पश्चात्—

'ॐ अमृते अमृतोद्भवे अमृतेश्वरि अमृतवर्षिणि अमृतमाकर्षयाकर्षय सिद्धिं मे देहि अमुकं (अमुकगोत्र-प्रवरनामधेयं शत्रुम् उदासीनं वा) मे वशमानय स्वाहा।'

—इस मन्त्रसे भी समयाको अभिमन्त्रित करके श्रीगुरु-पादुका मन्त्रसे श्रीगुरुका अपने मस्तकपर तीन बार संतर्पण करे। फिर मूलमन्त्रसे श्रीबगलामुखी देवीका भी तीन बार संतर्पण करके—

'ॐ ऐं वद वद वाग्वादिनि मम जिह्वाग्रे स्थिरा भव सर्वसत्त्ववशंकरि स्वाहा।'

इस मन्त्रको पढ़कर समयास्थित अवशिष्ट जलका कुण्डलिनीके मुखमें हवन करे।

श्रीयन्त्रका उद्धार

तदनन्तर स्त्री-वेश धारण करे, भाल देशमें सिन्दूरका तिलक लगाये, मुखमें पानका बीड़ा रख ले और प्रसन्नचित्त होकर 'मैं शिवा हूँ' ऐसी भावना करते हुए स्वकल्पोक्त विधिसे श्रीयन्त्रका उद्धार करे। पहले त्रिकोण, फिर षट्कोण

या षड्दल, फिर अष्टारचक्र, उसके बाद षोडशारचक्र और अन्तमें भूपुर अङ्कित करे। इस प्रकार क्रमशः यन्त्रका उद्धार करके मूलमन्त्रसे पुष्पाञ्जलि दे। फिर बायें कानके ऊर्ध्व भागमें 'ऐं गुरुभ्यो नमः', दक्षिण भागमें 'गं गणपतये नमः' तथा अग्रभागमें 'श्रीबगलामुख्यै नमः' यह मन्त्र पढ़कर गुरु, गणपति तथा बगलामुखी देवीको प्रणाम करे। यहाँ गणपति-मन्त्रके जपका भी विधान है। इस प्रकार प्रणाम करके मूलमन्त्रसे तीन बार प्राणायाम करे।

प्राणायाम-विधि

इसकी विशेष विधि इस प्रकार है—मूलाधारचक्रमें प्रातःकालिक सूर्यके समान अरुणकान्तिवाली देवीका पूरक-क्रिया करते समय चिन्तन करके उन्हें हृदयमें ले आये, फिर कुम्भककालमें कोटि विद्युतोंके समान भास्वर पीतवर्णा देवीका ध्यान करके उन्हें मस्तकवर्ती सहस्रारचक्रमें ले जाय। तत्पश्चात् रेचक-क्रिया करते हुए शुद्ध स्फटिकके समान कान्तिमती देवीका ध्यान करे। सहस्रारचक्रमें स्थित देवीका सम्पूर्ण अङ्ग झरते हुए अमृतरससे आप्लावित है। इस प्रकार चिन्तन करके एक प्राणायामकी पूर्ति करे। इसी तरह दो बार और करके तीन प्राणायाम पूर्ण करे। इसके बाद भूतशुद्धि करे।

भूत-शुद्धि

यह भावना करे कि मूलाधार चक्रके अन्तर्गत चतुर्दल कमलकी कर्णिकामें त्रिकोणके भीतर स्थित अधोमुख स्वयम्भू लिङ्गमें लिपटी हुई कुण्डलिनी देवी शोभा पाती है, उसकी आकृति सोयी हुई सर्पिणी-जैसी है। वह शङ्खकी भाँति साढ़े तीन वलयमें उक्त लिङ्गको परिवेष्टित किये हुए है। उसकी कान्ति करोड़ों विद्युतोंके समान उद्दीत है; वह कमल-नालके समान पतली है, मूल विद्या प्रकृतिस्वरूपा है तथा इष्टदेवतारूपिणी है। उसे कूर्चद्वारा बीजित त्रिकोणस्थ अग्निद्वारा जगाकर सचेत करे। उसे सुषुम्ना नाड़ीके मार्गसे जीवात्माके साथ द्वादशदल कमलपर्यन्त (अनाहत चक्रतक) ले जाय। फिर उसका ब्रह्मरन्ध्रमें स्थित परमात्माके साथ 'हंसः' इस मन्त्रसे संयोग कराकर अपने शरीरके दोनों पैरोंसे लेकर घुटनेतकके भागको पृथ्वी समझे और उसे जानुओंसे लेकर नाभितकके भागमें भावित जलमें विलीन कर दे। फिर उसको भी नाभिसे हृदयतकके भागमें स्थित अग्नितत्त्वमें विलीन करे। तत्पश्चात् उस अग्निको भ्रूमध्य-पर्यन्त भागमें स्थित वायुतत्त्वमें लीन करे और उसको भी भ्रूमध्यसे लेकर ब्रह्मरन्ध्रतक विद्यमान आकाशतत्त्वमें लीन करके आकाशको अहंकारमें, अहंकारको महत्तत्त्वमें तथा महत्तत्त्वको प्रकृतिमें विलीन कर दे। अन्ततोगत्वा प्रकृतिको भी परब्रह्ममें विलीन करे।

इसके बाद पाप-पुरुषका चिन्तन करे। पाप मानवरूपमें मूर्तिमान् है, ब्रह्महत्या उसका सिर तथा दोनों कंधे हैं, सुवर्णकी चोरी उसकी दोनों बाँहें हैं, मदिरापान उसका हृदय है, गुरुतल्पगमन दोनों कटिप्रदेश हैं, इन महापातकोंका संसर्ग उसके दोनों चरण हैं, उसके अङ्ग-प्रत्यङ्गमें रोम हैं और वे रोम उपपातकरूप हैं।

वह पाप-पुरुष ढाल और तलवार लिये हुए है और उसकी आकृति अँगूठेके बराबर है। उसका मुख नीचेकी ओर झुका है तथा अङ्गकान्ति काली है। ऐसे पाप-पुरुषका अपनी बायीं कुक्षिमें चिन्तन करे।

तदनन्तर 'यं' इस वायु-बीजका उच्चारण करके उस पाप-पुरुषका शोषण करे, फिर 'रं' इस अग्निबीजके उच्चारणपूर्वक उसके शुष्क शरीरको जला दे। फिर 'यं' इस वायुबीजके उच्चारणद्वारा पापपुरुषके उस भस्मको उड़ा दे। तत्पश्चात् 'वं' इस अमृतबीजका उच्चारण करके अमृतकी वर्षा करे, फिर 'लं' इस पृथ्वी बीजके उच्चारणद्वारा उस अमृतको घनीभूत करे। फिर 'हं' इस आकाशबीजके उच्चारणपूर्वक सुवर्णमय रूपका निर्माण करे। इसके बाद ऐसी भावना करे कि परमात्मासे प्रकृतिका प्राकट्य हुआ, प्रकृतिसे महत्तत्त्व, महत्तत्त्वसे अहंकार, अहंकारसे आकाश, आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल तथा जलसे पृथिवीका आविर्भाव हुआ है। इस प्रकार भावनाद्वारा इन सब तत्त्वोंका उत्पादन करके सबको अपने-अपने स्थानपर स्थापित करे। तदनन्तर परमात्मासे कुण्डलिनी शक्तिसहित, दीपककी लौके आकारवाले जीवात्माको 'सोऽहम्' इस मन्त्रके उच्चारणपूर्वक हृदयमें ले आये और कुण्डलिनीको पुनः मूलाधार चक्रमें स्थापित कर दे। फिर यह भावना करे कि मेरा अपना शरीर निष्पाप एवं देवताकी आराधना करनेके योग्य हो गया है।

इस प्रकार भूत-शुद्धि करके प्राण-प्रतिष्ठा करनी चाहिये।

प्राण-प्रतिष्ठा

पहले निम्नाङ्कित वाक्य पढ़कर प्राणप्रतिष्ठा-सम्बन्धी विनियोग करें।

विनियोग

ॐ अस्य श्रीप्राणप्रतिष्ठामन्त्रस्य ब्रह्मविष्णुरुद्रा ऋषयः, ऋग्यजुःसामानि छन्दांसि, प्राणशक्तिर्देवता, हलो बीजानि स्वराः शक्तयः, अव्यक्तं कीलकं मम प्राणस्थापने विनियोगः।

इसके बाद निम्नाङ्कित वाक्योंको पढ़ते हुए सिर और मुख आदिके स्पर्शपूर्वक ऋष्यादि-न्यासका कार्य सम्पन्न करे।

ऋष्यादिन्यास

ब्रह्मविष्णुरुद्रऋषिभ्यो नमः। शिरसि।
ऋग्यजुस्सामच्छन्दोभ्यो नमः। मुखे।
प्राणशक्तिदेवतायै नमः। हृदि।
हल्भ्यो बीजेभ्यो नमः। गुह्ये।
स्वरेभ्यः शक्तिभ्यो नमः। पादयोः।

करन्यास

ॐ कं खं गं घं ङं पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशात्मने, अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ओं चं छं जं झं ञं शब्दस्पर्शरूपरसगन्धात्मने, तर्जनीभ्यां नमः। ॐ टं ठं डं ढं णं श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणात्मने, मध्यमाभ्यां नमः। ॐ तं थं दं धं नं वाक्पादपाणिपायूपस्थात्मने, अनामिकाभ्यां नमः। ॐ पं फं बं भं मं वचनादानगमनविसर्गानन्दात्मने, कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं मनोबुद्ध्यहंकारचित्तात्मने, करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

इन्हीं मन्त्रोंसे हृदयादिन्यास करे यथा—

अङ्गन्यास

ॐ कं खं गं घं ङं पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशात्मने, हृदयाय नमः।

ॐ चं छं जं झं ञं शब्दस्पर्शरूपरसगन्धात्मने, शिरसे स्वाहा।

ॐ टं ठं डं ढं णं श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणात्मने, शिखायै वषट्।

ॐ तं थं दं धं नं वाक्पादपाणिपायूपस्थात्मने, कवचाय हुम्।

ॐ पं फं बं भं मं वचनादानगमनविसर्गानन्दात्मने, नेत्रत्रयाय वौषट्।

ॐ यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं मनोबुद्ध्यहंकारचित्तात्मने, अस्त्राय फट्।

ध्यान

अङ्गन्यासके अनन्तर इस प्रकार ध्यान करे—

रक्ताम्भोधिस्थपोतोल्लसदरुणसरोजाधिरूढा कराब्जैः
पाशं कोदण्डमिक्षूद्भवगुणमयमप्यङ्कुशं पञ्चबाणान्।
बिभ्राणासृक्कपालं त्रिनयनलसिता पीनवक्षोरुहाढ्या
देवी बालार्कवर्णा भवतु शुभकरी शक्तिराद्या परा नः॥

'लालसागरमें एक विशाल पोत है, जिसपर लाल रंगके कमलका आसन सुशोभित है। देवी उसके ऊपर विराजमान हैं। इन्होंने अपने कर-कमलोंमें पाश, ईखकी बनी हुई प्रत्यञ्चासे युक्त चाप, अङ्कुश और पाँच बाण ले रक्खे हैं। एक हाथमें खूनसे भरा खप्पर भी है। इनका मुखमण्डल तीन नेत्रोंसे सुशोभित है। वक्षःस्थल पीन कुच-कलशोंसे समलंकृत है। इनकी अङ्गकान्ति प्रातःकालके नवोदित सूर्यकी भाँति अरुण है। ऐसी आद्या पराशक्ति-स्वरूपा देवी हमारे लिये कल्याणकारिणी हों।'

इस प्रकार ध्यान करके हृदयपर हाथ रखकर प्राणोंकी स्थापना करे। प्राण-स्थापनाके समय निम्नाङ्कित मन्त्रोंका पाठ करते हुए इनके भावोंका चिन्तन करना चाहिये।

ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं ॐ क्षं सं हं सः ह्रीं ॐ हं सः मम प्राणा इह प्राणाः॥ ओं आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं ॐ क्षं सं हं सः ह्रीं ॐ हं सः मम जीव इह स्थितः॥

ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं ॐ क्षं सं हं सः ह्रीं ॐ हं सः मम सर्वेन्द्रियाणि इह स्थितानि॥ ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं ॐ क्षं सं हं सः ह्रीं ॐ हं सः मम वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रप्राण-प्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा।

'हाँ हूँ ! क्या हुआ कि मल्लयुद्धमें भद्र मुझे पटक लेता है। मुझे पटक तो लेता है वरूथप, मणिभद्र, सुबल...।' अब सब आपको पटकनी दे लेते हैं; किंतु सबसे बलवान् आप हैं, इसको कोई न स्वीकार करे तो मोहनका दोष ?

मथुरामें कंसके अखाड़ेमें मल्लप्रमुखोंको महाप्रयाणका मार्ग दिखाकर, उन सबके शवोंके मध्य ही सखाओंको खींच लिया आपने अखाड़ेमें और सखा पटकनी दे देते, यदि महाराज कंसके सिरपर काल न सवार हो गया होता। उस भरी सभामें सम्मान इसलिये रह गया कि कंस बीचमें ही बावला होकर चिल्लाने लगा।

× × ×

'श्याम ! बाबाकी पादुकाएँ तो उठा ला !' माता रोहिणी, मैया यशोदा अथवा कोई आदेश दे देता है और नन्हा कन्हाई मस्तकपर धरकर पादुकाएँ लाता है।

'मोहन ! वह पाटा तो ला।' कोई गोपी अपने या किसीको बैठनेके लिये पाटा मँगा लेती है।

'कृष्ण ! तनिक नाच तो सही !' चुटकी या ताली बजाकर गोपियाँ इस मेघसुन्दरको 'ताथेइ-ताथेइ ताता थेइ थेइ' नचाती ही रहती हैं।

देवर्षि नारद इसके गुणगान करते नहीं थकते और यह है कि मैयासे सायंकाल गोचारणसे लौटनेपर एक-एक सखाकी भूरि-भूरि प्रशंसा करता है। प्रशंसा भी अपने ढंगसे। यह कहेगा—'मैया ! तू इस सुबलको डाँट तो सही।'

'क्यों लाला ?'

'यह पक्का कृपण बन गया है।'

'अरे, सुबल ! कृपण बन रहा है तू !' मैया हँसकर ही पूछेगी; क्योंकि वह जानती है कि उसके पुत्रके शब्द-कोषमें शब्दोंके जो असाधारण अर्थ हैं, उनका ज्ञान देवी हंसवाहिनीको भी हो नहीं सकता।

'हाँ, मैया ! भद्र, तोक, वरूथप.......ये सब-के-सब कृपण हैं। मैया, ये तो सब जन्मसे कृपण हैं।' कृष्ण-चन्द्र अपना स्पष्टीकरण करेगा—'घरसे जो कुछ कलेऊ ले जायँगे या वनमें जो फल-फूल पायेंगे, एक भी नहीं खायेंगे। सब मेरे ही पीछे पड़े रहते हैं—यह बड़ा मधुर है—तू खा ले !' मैं इनको न बाँटूँ तो ये भूखे ही रह जायँ।'

'मेरा लाल सखाओंका बहुत ध्यान रखता है।' मैया हँसती है।

'मैया ! ये सब मेरे ही पीछे पड़े रहते हैं—धूपमें मत खड़ा हो। पेड़पर मत चढ़ ! दूरतक दौड़ेगा तो थकेगा। मुझे आदेश दे-देकर तंग कर लेते हैं ये सब।'

'ओह ! तो ये सब-के-सब मेरे पुत्रको तंग करते हैं।' मैया हँसते-हँसते डाँटती है सखाओंको।

'यह स्तोक पुष्प बड़े सुन्दर लाता है। बेचारा नन्हा स्तोक भी नहीं बचता, लेकिन लगायेगा मेरे ही केशोंमें। मैया, यह मुझसे छोटा है। इसे मैं खिलाऊँ, सजाऊँ—यह मेरा अधिकार है न ? यह तो उल्टे कमलपत्र लेकर मुझे ही व्यजन करने बैठ जाता है। तू कम-से-कम इसे तो मार लगा।'

कन्हाईके स्तवनकी परिपाटी है यह ! यह चपल सम्मान भी देगा और दिखायेगा ऐसा कि पूछिये मत—

× × ×

द्वारकानाथ, द्वारकाधीशके नामसे आप भले श्रीकृष्ण-चन्द्रको पहचानते हों और भले द्वारकाकी राजसभामें श्याम-की सम्मति ही सर्वोपरि मानी जाती हो; किंतु यादव महाराज उग्रसेन हैं। अपने हाथों कन्हाईने जिनको कारागार-मुक्त किया, उनको सिंहासनपर अभिषिक्त करके यह उनके सम्मुख हाथ जोड़कर अत्यन्त विनम्र खड़ा होता है और जब उनसे कुछ कहना होता है—'देव ! निवेदन है' कहकर बोलता है।

'जैसी आज्ञा, प्रभु !' उग्रसेनके सम्मुख श्रीकृष्णचन्द्र कहते हैं। वे श्रीकृष्ण, जिनका आदेश पालन करनेमें समस्त लोकपाल अपना गौरव मानते हैं।

धर्मराज युधिष्ठिरने राजसूय यज्ञ किया और वे एक-च्छत्र सम्राट् हो गये। किसकी शक्तिसे, किसकी अनुकम्पासे यह हुआ ? श्रीकृष्ण सहायक न होते, सचमुच धर्मराज राजसूय यज्ञ करनेमें सफल हो जाते ?

श्रीकृष्ण नरेश नहीं हैं। वे राजसूय नहीं कर सकते थे। महाराज उग्रसेन तो राजसूय कर सकते थे ?

उग्रसेनः क्षितीशेशो यद् व आज्ञापयत् प्रभुः।
तदव्यग्रधियः श्रुत्वा कुरुध्वं माविलम्बितम्॥

(श्रीमद्भा० १०। ६८। २१)

बलरामजीने भीष्म, द्रोण, कर्ण, दुर्योधनादि सबसे कहा था—'प्रभु—सर्वसमर्थ महाराजाधिराज उग्रसेनजी तुमलोगोंको जो आज्ञा दे रहे हैं, उसे स्थिर बुद्धिसे—सावधानीपूर्वक सुनकर उसका पालन करो । इस आज्ञाके पालनमें देर मत करो ।'

कौरवोंको भ्रम हो गया—उनको लगा कि बलराम डींग मार रहे हैं । उन्होंने उग्रसेनजीको सम्राट् एवं आज्ञा देनेका अधिकारी मानना अस्वीकार किया और लगे हाथ उन्हें उसका फल मिलता दीख पड़ा । दो घड़ी भी बीती नहीं और लगा कि पूरा हस्तिनापुर गङ्गाके गर्भमें जा रहा है । हाथ जोड़े, रोते-चिल्लाते बलरामजीकी शरण आना पड़ा उन्हें ।

'उग्रसेन सम्राट् ! सम्राटोंके भी सम्राट् ! आप उससे भी बड़ा कहें तो वह भी ! हल-मुसल लिये नीलाम्बर-परिधान आप किसी पथके भिक्षुकको—कुत्तेको भी सम्राट् कहें तो सुरपति भी उसको अपना सम्राट् माननेको बाध्य है । उग्रसेनजी तो फिर भी यादव महाराज हैं ।'

किंतु श्यामसुन्दर—हलधरका यह अनुज ! इसने उग्रसेनजीको,—अपने कुलको सम्राट्पद कहाँ दिया ? इसने सम्राट्पद दिया युधिष्ठिरको । युधिष्ठिरके उस राजसूय यज्ञमें इसकी प्रथम पूजा हुई—यह पाण्डवोंका प्रेम; किंतु उस यज्ञमें इसने सेवा क्या ली थी, यह पता है आपको ? अतिथियोंके पाद-प्रक्षालन तथा जूठी पत्तलें उठानेकी सेवा ली थी श्रीकृष्णने ।

राजसूय यज्ञमें सभी स्वजन कुछ-न-कुछ कार्य कर रहे थे । दानाध्यक्ष थे कर्ण । महाराजाधिराजको देश-देशके नरेश उपहार भेंट करने लाये थे । उन उपहारोंको स्वीकार करनेका गौरवपूर्ण पद प्राप्त हुआ था—दुर्योधनको । भोजनालयकी व्यवस्था भीमसेन करते थे और श्रीकृष्ण पैर धुलाते थे आगतोंका तथा जूठी पत्तलें उठाते थे ।

महाभारतका युद्ध ही पाण्डव किसके बलपर जीत सके ? किंतु श्रीकृष्ण तो अर्जुनके सारथि थे । सारथि भी अधूरे नहीं—पूरे । रथके घोड़ोंको वे युद्धभूमिसे लौटकर मलते थे, टहलाते थे । घोड़ोंके घास-दानेकी व्यवस्था सँभालते थे और रथसे पहले उतरकर अर्जुनको हाथका सहारा देकर रथसे उतारते थे ।

× × ×

श्रीरघुनाथने क्या किया ? पूरी रामायण पढ़ लीजिये ! अपनोंको पद-पदपर सम्मानित ही तो किया है उन मर्यादा-पुरुषोत्तमने । विभीषण शरणमें आये तो सुग्रीवसे पूछते हैं—'मित्र ! रावणका भाई मिलने आया है । क्या करना चाहिये ?'

यह भिन्न बात है कि सुग्रीवने जो सम्मति दी, वह उचित नहीं लगी; किंतु सम्मतिका सम्मान करके ही आगे कुछ कहा गया । पहली बात यही—'मित्र ! तुमने बड़ी अच्छी नीतिकी बात कही है ।'

विभीषणको अपना लिया तो उनकी बात मानकर तीन दिन निर्जल व्रत करते हुए समुद्र-किनारे कुशासनपर बैठे सागरसे मार्ग देनेकी प्रार्थना करते रहे ।

खेलमें कन्हाई प्रायः हारता है व्रजमें । दाऊ दादाका दल जीतता है और वे साथ न हों तो विजय श्रीदामाके पक्षकी होती है । श्यामकी पीठपर विजयी सखा चड्ढी कसते हैं ।

अयोध्याकी रीति-नीति इससे भिन्न नहीं है । भिन्न हो भी नहीं सकती । भरतलाल चित्रकूटमें भरे कण्ठ अपने बाल्यकालका स्मरण करके कह रहे हैं—

मैं प्रभु कृपा रीति जियँ जोही । हारेहुँ खेल जितावहिं मोही ॥

मर्यादापुरुषोत्तम हैं, अतः पारखी प्राणोंसे 'कृपारीति' छिपा नहीं पाते । लेकिन बाबा नन्दका नटखट लाल—यह तो खेलमें सखाको विजयी कर देगा जान-बूझकर और फिर झगड़ेगा—'मैं विजयी हुआ । दाव तू दे ! मैं नहीं देता दाव !'

गोपियाँ हों या गोपकुमार—कन्हाई रूठेको मनाता है । हाथ जोड़कर, पैर पड़कर—जैसे भी कोई मान जाय । किंतु इसे रूठना नहीं आता । इसका यह असीम स्नेह ही तो औरोंको रूठनेकी प्रेरणा देता है । इसे चिढ़ाना आता है, खिझाना आता है, किंतु रूठना नहीं आता । अपनोंसे व्रजराजकुमार कभी रूठता नहीं—रूठ सकता ही नहीं । लोग कहते हैं—'दैव रूठ गया ।' रूठता होगा दैव, किंतु हमारा कृष्ण तो सदा तुष्ट ही रहता है । इसे तो रूठेको मनाना ही आता है ।

कन्हाईका सम्मान—कोई क्या सम्मान देगा इस व्रजके युवराजको ? बड़े-बड़े ऋषि-मुनि इसकी स्तुति करते थकते नहीं । ब्रह्मा, इन्द्र, शारदा ही नहीं—भगवान्

शशाङ्कशेखर भी इसके पदोंमें मस्तक झुकाते हैं; किंतु स्तुति-प्रणति करके क्या इस चपलको गम्भीर बनाना अच्छा लगता है ? इसे ही क्या यह सब रुचता है ?

प्रणाम करने जाओ तो यह अँगूठे दिखायेगा और तुम्हारी पूजा करने लगेगा। इसका श्रृङ्गार करने बैठो तो यह उलटा तुम्हारा श्रृङ्गार कर देगा। यह मदनमोहन—अपनोंकी सेवा, अपनोंका सम्मान करनेमें ही इसके प्राण बसते हैं।

'ज्ञानिनामग्रगण्य' श्रीहनुमान्‌जी

(लेखक—प्रो० श्रीलल्लनजी पाण्डेय, एम्० ए०, बी० एल्०)

भारतवर्षकी इस परम पावन भूमिमें संत एवं महर्षि ग्रन्थकारोंने अपनी श्रेष्ठतम रचनाओंमें जिन अनेकानेक महच्चरित्रोंका गुणगान किया है, उनमें पवनसुत अञ्जनीकुमार मङ्गलागार, संसारभारापहर, वानराकारविग्रह, पुरारी, सामगाताग्रणी, कामतेजाग्रणी, रामहित, रामभक्तानुवर्ती, विमलगुण, विद्या-वारिधि, बुद्धि-विधाता श्रीहनुमान्‌जीका नाम सर्वोच्च शिखरपर शोभायमान है। प्रचलित परम्परानुसार श्रीहनुमान्‌जीका केवल मल्लशाला-महारथियोंके बीच ही पूजा जाना एवं तथाकथित बुद्धिजीवियोंके मध्य कुछ विनोद एवं हास्यके विषयके रूपमें ही मूर्तिमान् होना—एक प्रकारसे हमारी अज्ञानताका परिचायक है। इस शोचनीय स्थितिसे मुक्तिके लिये एक ही साधन है—हृदयकी समस्त श्रद्धा अर्पितकर ग्रन्थोंका अध्ययन एवं मनन किया जाय। तभी पूर्वाग्रह मिट सकेंगे, अज्ञानान्धकार दूर हो सकेगा। एवं सत्यका प्रत्यक्षीकरण करके हम ग्रन्थोंमें वर्णित महच्चरित्रोंको पहचान सकेंगे। इन ग्रन्थोंने श्रीहनुमान्‌जीको **'ज्ञानिनामग्रगण्यं'** तथा **'बुद्धिमतां वरिष्ठम्'** आदि विशेषणोंसे विभूषित किया है, जिनका प्रयोग निस्संदेह अपनेमें अपरिमित सार्थकता आवेष्टित किये हुए है। यदि ऐसा है तो बुद्धिवादियों एवं ज्ञानियोंके लिये भी श्रीहनुमान्‌जीको परम आराध्य, आदर्श एवं प्रेरणास्रोत होनेका अधिकार प्राप्त है। विश्वविख्यात भट-चक्रवर्ती होते हुए आप सुभटोंके आराध्य हैं ही। हमारे ग्रन्थोंमें श्रीहनुमान्‌जीको 'ज्ञानियोंमें अग्रगण्य' तथा 'बुद्धिमानोंमें वरिष्ठ' किस प्रकार सप्रमाण घोषित किया है—यह जाननेका विषय है।

संस्कृत भाषामें प्रयुक्त 'बुद्धिः' एवं 'ज्ञानं' शब्द एक दूसरेके पर्यायवाची हैं, जिनका तात्पर्य होता है **'निश्चयात्मिकान्तःकरणवृत्तिः'** अथवा **'सविकल्पकज्ञानं'**। धीः, प्रज्ञा, मतिः, प्रेक्षा, मेधा, प्रतिभा आदि अनेक शब्द 'बुद्धिः' तथा 'ज्ञानं' के स्थानपर प्रयुक्त होते हैं। निश्चयात्मिका बुद्धिसे निस्संशय ज्ञानका बोध होता है। आध्यात्मिकताके परिवेशमें अभिषिञ्चित भारतीय दर्शनका यह मत है कि निस्संशय ज्ञानका प्रादुर्भाव तभी सम्भव है, जब व्यक्ति ब्रह्मात्मैक्य-ज्ञानसे अपनी बुद्धिको अभिमानशून्य, निर्विषय, शान्त, निर्वैर तथा सम बना ले। ऐसा व्यक्ति स्वतः ब्रह्मके स्वरूपको—अमृतत्वको प्राप्त करता है। श्रीहनुमान्‌जीके अजरत्व-अमरत्वकी स्थितिके मूलमें सम्भवतः यही विचारधारा प्रवाहित है। इस दर्शनको पुष्टि प्रदान करनेके लिये केनोपनिषद्‌में एक आख्यायिका प्रस्तुत की गयी है। वस्तुतः इस आख्यायिकाका सृजन केनोपनिषद्‌के प्रथम प्रश्नवाचक मन्त्रकी व्याख्याके लिये ही किया गया है।

मन्त्र है—

केनेषितं पतति प्रेषितं मनः केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः।
केनेषितां वाचमिमां वदन्ति चक्षुः श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति॥

(केनोपनिषद् १)

अर्थात्, किसके द्वारा इच्छा किया हुआ तथा प्रेरित हुआ मन गिरता है ? किसके द्वारा प्रेरित हुआ प्राण, जो प्रथम है, प्रवृत्त होता है ? किसके द्वारा प्रेरित यह वाणी उच्चारण करती है। चक्षु-श्रोत्रको कौन-सा देव प्रेरण करता है।' मन, प्राण, ज्ञानेन्द्रियादिके एकमात्र प्रेरक सर्वान्तर प्रत्यगात्मा सर्वशक्तिमान् निर्विशेष परात्पर परब्रह्म परमेश्वर ही है—इस प्रकारकी संशयरहित अनुभूति ही ज्ञान या ब्रह्मज्ञान है, एवं इसका अनुभव करनेवाले व्यक्तिको ज्ञानी कहते हैं। ऐसे ज्ञानियोंमें अहंकार नहीं रहता। वस्तुतः अहंकारका बीज तो तभी अङ्कुरित होता है, जब देही अपने जड शरीर एवं मनको ही कर्ता मान बैठता है। चुम्बकके प्रभावसे यदि लौह अपनेको चेतन-मान अहंकार कर बैठे तो यह उसका कोरा अज्ञान ही तो है ! लौह तो मात्र निमित्त बना हुआ है, क्रियाशीलता का सृजन करनेवाला तो चुम्बक है। ठीक इसी प्रकार

अजर-अमर, सतत प्रकाशमय ब्रह्मस्वरूप आत्माके प्रभाव-से ही शरीर कार्य करता है। अतः कार्यका श्रेय आत्मा-को मिले या जड शरीरको ? तब यदि आत्मा ही कर्त्ता है तो शरीर एवं मनका अभिमान करना व्यर्थ है। यही कारण है कि ज्ञानी पुरुष अभिमान-रहित होते हैं। असुरोंपर विजय-प्राप्तिके पश्चात् अग्नि, वायु, इन्द्रको मिथ्याभिमान हो गया। परंतु जब परमात्माकी इच्छा नहीं हुई तो एक तृणका भी वे बाल बाँका न कर सके। जब मिथ्याभिमान दूर हो गया, तब ब्रह्मविद्याके माध्यमसे इन्द्रको सर्वप्रथम परमेश्वरका ज्ञान हुआ। फिर तो अग्नि एवं वायुको भी उस ज्ञानकी प्राप्ति हुई। ज्ञानी पुरुष ब्रह्मस्वरूप होता है। इसीलिये वेदोंमें अग्नि, वायु एवं इन्द्र—ब्रह्मके रूपमें आराध्य हैं।

'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति।'

श्रीहनुमान्‌जी केवल ज्ञानी ही नहीं, ज्ञानियोंमें अग्रगण्य थे। नेतृत्व प्रदान करनेवाला व्यक्ति अपने कार्यमें अति दक्ष होता है। उसके समक्ष पथ-भ्रष्ट होनेका प्रश्न नहीं; क्योंकि उसके ज्ञानमें कहीं अपूर्णता है ही नहीं। देवर्षि नारद भी ज्ञानी थे, किंतु वे अग्रगण्य नहीं हुए; क्योंकि कामपर विजय-प्राप्तिका श्रेय लेकर, व्यर्थ अभिमानका प्रदर्शन करके, वरिष्ठताकी परीक्षामें असफल घोषित कर दिये गये। परंतु श्रीहनुमान्‌जीके साथ ऐसी बात नहीं—अहंकारसे सर्वथा मुक्त! ईश्वर तो कुशल परीक्षक है न! रावणशासित लङ्कामें जनकनन्दिनी सीताका प्रत्यक्ष कुशल-क्षेम प्राप्त कर लेना असाध्य कार्य था। परंतु श्रीहनुमान्‌जीने ही इस विकट कार्यको सम्पन्न किया। इतने दुष्कर कार्य-समापनके पश्चात् हृत्प्रदेशमें अहंकारका प्रस्फुटित होना स्वाभाविक था। भगवान् श्रीरामने पवनसुतकी महान् प्रशंसा कर उनकी परीक्षा लेनी चाही—

सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी॥
प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा॥
सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउँ करि बिचार मन माहीं॥
पुनि पुनि कपिहि चितव सुरत्राता। लोचन नीर पुलक अति गाता॥
(मानस [illegible] । ३-४)

ब्रह्म मूर्तिमान् होकर सम्मुख ही जीवकी प्रशंसा करे और जीव विगतस्पृह, अहंकारशून्य रह जाय—जीवके लिये सर्वोत्कृष्ट स्थिति यही तो है! रामने हनुमान्‌की प्रशंसा की; किंतु हनुमान्‌जीको विदित है कि यह सब तो रामकी ही कृपा थी। ज्ञान कसौटीपर था। हनुमान्‌जीने अनुभव किया कि ज्ञान समाप्त हुआ चाहता है। बिना शरणागति भक्तिका सम्बल लिये यह टिक नहीं सकता। यदि ज्ञान गया तो अहंकारका प्रादुर्भाव होगा—राम दूर हट जायेंगे। यही सोच—

चरन परेउ प्रेमाकुल त्राहि त्राहि भगवंत॥

हे भगवन्! मेरी रक्षा करो, रक्षा करो। प्रभुका वरद-हस्त पाकर हनुमान् उनके चरणोंको छोड़ना नहीं चाहते। भगवान् शंकर भी इस स्थितिका स्मरण करके आनन्दविभोर हो उठते हैं—

प्रभु कर पंकज कपि कें सीसा। सुमिरि सो दसा मगन गौरीसा॥

इस प्रकार ग्रन्थोंमें ऐसे अनेक प्रकरणोंका समावेश है, जहाँ श्रीहनुमान्‌जीके समक्ष ही उनकी विशद प्रशंसा की गयी है, परंतु उनकी अहंकारशून्यता यथावत्, पूर्ववत् बनी रही। जो व्यक्ति अपनी अपरिमेय, अथाह बल-बुद्धिको विस्मृत किये रहता हो (केवल याद दिलाने-पर ही याद करे), अहंकारशून्यताका इससे बढ़कर संकेत और हो ही क्या सकता है। राज्यका कार्य-भार सँभालनेके पश्चात् एक दिन कोसलेन्द्र भगवान् श्रीरामने दक्षिणाशाश्रयी महर्षि अगस्त्यसे अपनी कुछ जिज्ञासाओं-की परितृप्ति चाही—

अतुलं बलमेतद् वै वालिनो रावणस्य च।
न त्वेताभ्यां हनुमता समं त्विति मतिर्मम॥
शौर्यं दाक्ष्यं बलं धैर्यं प्राज्ञता नयसाधनम्।
विक्रमश्च प्रभावश्च हनूमति कृतालयाः॥
(वा० उ० ३५। २-३)

अर्थात् 'महर्षे! इसमें संदेह नहीं कि वाली एवं रावणके इस बलकी कहीं तुलना नहीं थी, परंतु मेरा ऐसा विचार है कि इन दोनोंका बल भी हनुमान्‌जीके बलकी बराबरी नहीं कर सकता था। शूरता, दक्षता, बल, धैर्य, बुद्धिमत्ता, नीति, पराक्रम और प्रभाव—इन सभी सद्‌गुणोंने हनुमान्‌जीके भीतर घर कर रक्खा है।' इतना ही नहीं, श्रीरामने तो इतना भी कह डालनेमें संकोचका अनुभव नहीं किया—

न कालस्य न शक्रस्य न विष्णोर्वित्तपस्य च।
कर्माणि तानि श्रूयन्ते यानि युद्धे हनूमतः॥
(वा० उ० ३५। ८)

अर्थात् 'युद्धमें जो पराक्रम हनुमान्‌जीके देखे गये हैं, वैसे वीरतापूर्ण कार्य न तो कालके, न इन्द्रके, न भगवान् विष्णुके और न वरुणके ही सुने जाते हैं।' यहींपर श्रीरामने जिज्ञासा प्रकट की है कि हनुमान्‌जीने, इतने शक्ति-सम्पन्न होते हुए भी, वालीको भस्म नहीं किया—क्यों ? परंतु तत्काल ही उन्होंने अनुभव किया कि हनुमान्‌जी-जैसे अभिमानरहित महात्माको सदा अपने बलका ज्ञान कैसे रह सकता है ? इसी विस्मृतिके कारण हनुमान्‌जीने वालीका वध नहीं किया। अभिमानशून्यताका इससे उत्कृष्ट उदाहरण और हो ही क्या सकता है ? श्रीहनुमान्‌जीके विषयमें उनके समक्ष ही महर्षि अगस्त्यने कुछ ऐसी बातोंका रहस्योद्घाटन किया जो निश्चित ही अनुपम थीं—

पराक्रमोत्साहमतिप्रताप-
सौशील्यमाधुर्यनयानयैश्च ।
गाम्भीर्यचातुर्यसुवीर्यधैर्यै-
र्हनूमतः कोऽप्यधिकोऽस्ति लोके ॥
(वा० उ० ३६ । ४४)

अर्थात् 'संसारमें ऐसा कौन है, जो पराक्रम, उत्साह, बुद्धि, प्रताप, सुशीलता, मधुरता, नीति-अनीतिके विवेक, गम्भीरता, चतुरता, उत्तम बल और धैर्यमें हनुमान्‌जीसे बढ़कर हो।' वस्तुतः हनुमान्‌जीके इन सद्‌गुणोंको श्रीरामने प्रथम साक्षात्कारमें ही पहचान लिया था। यहाँपर तो महर्षि अगस्त्यने हनुमान्-सम्बन्धी श्रीरामके विश्वासोंको सप्रमाण पुष्ट मात्र किया है। सुग्रीवद्वारा प्रेषित हनुमान्‌जी जब राम-लक्ष्मणसे प्रथम बार भिक्षुक-रूपमें मिलते हैं, इनके वार्तालापके अनूठे ढंगका अवलोकन करके श्रीराम लक्ष्मणसे जिन निम्नाङ्कित शब्दोंका प्रयोग करते हैं, उनसे भी श्रीहनुमान्‌जीके व्यक्तित्वकी झलक मिलती है—

नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः ।
नासामवेदविदुषः शक्यमेवं विभाषितुम् ॥
नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम् ।
बहु व्याहरतानेन न किंचिदपशब्दितम् ॥
न मुखे नेत्रयोश्चापि ललाटे च भ्रुवोस्तथा ।
अन्येष्वपि च सर्वेषु दोषः संविदितः क्वचित् ॥
अविस्तरमसंदिग्धमविलम्बितमव्यथम् ।
उरःस्थं कण्ठगं वाक्यं वर्तते मध्यमस्वरम् ॥
संस्कारक्रमसम्पन्नामद्भुतामविलम्बिताम् ।
उच्चारयति कल्याणीं वाचं हृदयहर्षिणीम् ॥
अनया चित्रया वाचा त्रिस्थानव्यञ्जनस्थया ।
कस्य नाराध्यते चित्तमुद्यतासेररेरपि ॥
(वा० कि० ३ । २८–३२)

अर्थात् 'जिस पुरुषने ऋग्वेद नहीं पढ़ा, यजुर्वेद अथवा सामवेद भी नहीं पढ़े, वह पुरुष कभी ऐसे वचन कहनेमें समर्थ नहीं हो सकता। हमारा विश्वास है कि इन वानरश्रेष्ठने निश्चय समस्त व्याकरण शास्त्रका अध्ययन किया है; क्योंकि बहुत देरतक गीर्वाण भाषा बोलते हुए भी उसमें इन्होंने एक भी दूषित शब्दका प्रयोग नहीं किया है। इनके मुख, नेत्र, ललाट अथवा भौंह आदि अन्य अङ्गोंमें बोलनेके समय कोई दोष नहीं पाया गया। इनके वचन विस्तारसे रहित हैं, संदेहयुक्त नहीं होते, इन्होंने स्पष्ट मध्यम स्वरमें बिना देर लगाये हुए अन्तरमें टिके हुए कण्ठगत सब वचन कहे हैं। इन्होंने जो कुछ कहा है, संस्कारयुक्त, अविलम्बित, अद्भुत कल्याणदायिनी हृदय हरण करनेवाली मनोहर वाणीसे कहा है। छाती, कण्ठ एवं मस्तक—इन तीन स्थानोंसे निकली हुई इनकी विचित्र वाणी श्रवण करते ही हाथमें खड्ग उठाये हुए शत्रुका चित्त भी प्रसन्न कर दे।' श्रीहनुमान्‌विषयक रामके इस निश्चित अनुमानकी पुष्टि महर्षि अगस्त्यने अन्तमें की है। श्री-हनुमान्‌जीके ज्ञानका स्रोत क्या था ? महर्षि अगस्त्यने बताया है—

असौ पुनर्व्याकरणं ग्रहीष्यन्
सूर्योन्मुखः प्रष्टुमनाः कपीन्द्रः ।
उद्यद्गिरेरस्तगिरिं जगाम
ग्रन्थं महद्धारयनप्रमेयः ॥
(वा० उ० ३६ । ४५)

अर्थात्, 'ये असीम शक्तिशाली कपिश्रेष्ठ हनुमान् व्याकरणका अध्ययन करनेके लिये शङ्काएँ पूछनेकी इच्छासे सूर्यकी ओर मुँह रखकर महान् ग्रन्थ धारण किये उनके आगे-आगे उदयाचलसे अस्ताचलतक चले जाते थे।' इस प्रकार—

ससूत्रवृत्त्यर्थपदं महार्थं
ससंग्रहं सिद्ध्यति वै कपीन्द्रः ।
नह्यस्य कश्चित् सदृशोऽस्ति शास्त्रे
वैशारदे छन्दगतौ तथैव ॥
(वा० उ० ३६ । ४६)

अर्थात्, 'इन्होंने सूत्र, वृत्ति, वार्तिक, महाभाष्य और संग्रह—इन सबका अच्छी तरह अध्ययन किया है। अन्यान्य शास्त्रोंके ज्ञान तथा छन्दःशास्त्रके अध्ययनमें भी इनकी समानता करनेवाला दूसरा कोई विद्वान् नहीं है।' इतना ही नहीं—

सर्वासु विद्यासु तपोविधाने
प्रस्पर्धतेऽयं हि गुरुं सुराणाम्।
सोऽयं नवव्याकरणार्थवेत्ता
ब्रह्मा भविष्यत्यपि ते प्रसादात्॥
(वा० उ० ३६। ४७)

अर्थात्, 'सम्पूर्ण विद्याओंके ज्ञान तथा तपस्याके अनुष्ठानमें ये देवगुरु बृहस्पतिकी बराबरी करते हैं। नव व्याकरणोंके सिद्धान्तको जाननेवाले ये हनुमान्‌जी आपकी कृपासे साक्षात् ब्रह्माके समान आदरणीय होंगे।'

इस प्रकार, सर्व-बुद्धि-सम्पन्न होते हुए भी श्रीहनुमान्‌जी-की अभिमानशून्यता उनके नामके साथ लगे विशेषण 'बुद्धिमतां वरिष्ठः' की सार्थकताको भलीभाँति प्रमाणित करती है। इतने शास्त्रीय प्रमाणोंके बाद भी यदि कुछ तथाकथित प्रगतिशील विद्वज्जन हनुमान्‌जीको केवल शाखामृग समझकर उन्हें हास्य एवं विनोदकी सामग्रीके रूपमें ही स्वीकार करें तो इसमें उनका (विद्वानोंका) दोष नहीं—उनके संस्कारका दोष है।

ज्ञानके लिये दूसरा आवश्यक तत्त्व है—निर्विषयता। प्राणीमात्र इन्द्रिय-जनित निकृष्ट सुखोंमें इस प्रकार तिरोहित है कि उससे पलायन कर सकना इसके लिये सर्वथा दुष्कर कार्य है। शुद्ध ज्ञानकी सम्पुष्ट आधारशिलापर पदासीन एक ब्रह्मज्ञानीके लिये ही यह सम्भव हो सकता है कि वह अपनी विषयोन्मुखी इन्द्रियोंपर नियन्त्रण प्राप्त कर सके। श्रीहनुमान्‌जी इस क्षेत्रमें भी अद्वितीय हैं। महातेजस्वी कपिवरने रावणका समस्त अन्तःपुर छान डाला तो भी वहाँ उन्हें जनकनन्दिनी सीताके दर्शन नहीं हुए। अन्तःपुरमें पर्यटन करते हुए उन्हें परायी स्त्रियोंको विभिन्न रूपोंमें देखनेके लिये बाध्य होना पड़ा था। वस्तुतः सीताको नारियोंके बीच ही तो खोजा जा सकता था। उन सोती हुई स्त्रियोंको देखते-देखते महाकपि हनुमान्‌जी अधर्मके भयसे सशंकित हो उठे। उनके हृदयमें बड़ा भारी संदेह उपस्थित हो गया। वे सोचने लगे—

परदारावरोधस्य प्रसुप्तस्य निरीक्षणम्।
इदं खलु ममात्यर्थं धर्मलोपं करिष्यति॥
न हि मे परदाराणां दृष्टिर्विषयवर्तिनी।
अयं चात्र मया दृष्टः परदारपरिग्रहः॥
(वा० सु० ११। ३८-३९)

अर्थात् इस प्रकार गाढ़ी निद्रामें सोयी हुई परायी स्त्रियोंको देखना अच्छा नहीं है। यह तो मेरे धर्मका अत्यन्त विनाश कर डालेगा।' मेरी दृष्टि अबतक कभी परायी स्त्रियोंपर नहीं पड़ी थी। यहाँ आनेपर मुझे परायी स्त्रियोंके अपहरणकर्ता इस पापी रावणका भी दर्शन हुआ है।' इस प्रकारकी चिन्ताओंसे श्रीहनुमान्‌जीका हृदय व्याप्त हो जाता है। तत्काल ही अपने इन कार्योंको वे धर्माधर्मके तत्त्वोंकी कसौटीपर कसते हैं। परिणामस्वरूप, उन्होंने यही निष्कर्ष निकाला कि इन्द्रियोंके व्यापारमें यदि मनका योग न हो तो कर्ताको पाप नहीं लगता। गीतामें भी धर्मके इस तत्त्वकी व्याख्या की गयी है।

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा॥
कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वाऽऽत्मशुद्धये॥
(गीता ५। १०-११)

अर्थात् 'जो ब्रह्ममें अर्पण कर आसक्ति-विरहित कर्म करता है, उसको वैसे ही पाप नहीं लगता, जैसे कमलके पत्तेको पानी नहीं लगता। (अतएव) कर्मयोगी (ऐसी अहंकारबुद्धि न रखकर कि मैं करता हूँ), आसक्ति छोड़कर, मात्र शरीर, मन, बुद्धि एवं इन्द्रियोंसे भी आत्मशुद्धिके लिये कर्म किया करते हैं।' परायी स्त्रियोंको अवलोकित करनेमें हनुमान्‌जीको कोई आसक्ति नहीं थी। उनका लक्ष्य तो कुछ और ही था। मन जनकनन्दिनीको ढूँढ़नेमें रत था। इसीलिये स्त्रियोंका प्रत्यक्षीकरण करते समय, मनका योग नहीं होनेसे वासना नहीं थी। अतः हनुमान्‌जी अधर्मसे दूर रहे। स्वयं हनुमान्‌जीने अनुभव किया—

कामं दृष्टा मया सर्वा विश्वस्ता रावणस्त्रियः।
न तु मे मनसा किंचिद् वैकृत्यमुपपद्यते॥
मनो हि हेतुः सर्वेषामिन्द्रियाणां प्रवर्तने।
शुभाशुभास्ववस्थासु तच्च मे सुव्यवस्थितम्॥
(वा० सु० ११। ४१-४२)

अर्थात् 'इसमें संदेह नहीं कि रावणकी स्त्रियाँ निःशंक सो रही थीं और उसी अवस्थामें मैंने उन सबको अच्छी तरह देखा है; तथापि मेरे मनमें कोई विकार नहीं उत्पन्न हुआ है। सम्पूर्ण इन्द्रियोंको शुभ एवं अशुभ अवस्थाओंमें लगनेकी प्रेरणा देनेमें मन ही कारण है; किंतु मेरा वह मन पूर्णतः स्थिर है (उसमें कहीं कोई विकार नहीं); इसलिये मेरा यह परस्त्री-दर्शन धर्मका लोप करनेवाला नहीं हो सकता।' इस प्रकारके वर्णित अनेक प्रकरणोंसे श्रीहनुमान्जीकी निष्कलङ्क निर्विषयता निर्विवाद प्रमाणित होती है; जो ज्ञानका एक आवश्यक तत्त्व है। इस दृष्टिसे भी श्रीहनुमान्जी ज्ञानियोंमें अग्रगण्य हैं।

भारतीय दर्शनके अनुसार ज्ञानमें केवल अहंकारशून्यता एवं निर्विषयताके ही तत्त्व नहीं हैं, अपितु इसमें निर्वैरता, समता, शान्ति आदि अनेक तत्त्व समाविष्ट हैं। संक्षेपमें, उपर्युक्त समस्त तत्त्वोंसे अभिषिक्त ज्ञान एक ऐसा तेजोमय दीपक है जिसके समीप जाते ही मदादि सभी विकार पतंगेकी भाँति जल जाते हैं—

एहि बिधि लेसै दीप तेज रासि बिग्यानमय।
जातहिं जासु समीप जरहिं मदादिक सलभ सब॥
(मानस उ० ११७ घ)

यही स्थिति सोऽहमस्मिकी है। जब संसारके मूल भेदरूपी भ्रमका नाश हो जाता है। श्रीहनुमान्जी स्पष्टतः इस स्थितिको प्राप्त थे।

वेश्लर (Wechsler) प्रभृति सुप्रसिद्ध पाश्चात्त्य मनोवैज्ञानिकोंने व्यक्तिद्वारा किसी अभिप्रायकी पूर्तिके लिये कार्य करने, तर्कपूर्ण चिन्तन करने तथा अपने वातावरणसे उचित एवं प्रभावपूर्ण ढंगसे अभियोजन स्थापित करनेकी सम्पूर्ण या सार्वभौम क्षमताको ही बुद्धिकी संज्ञा दी है। इस परिभाषाका विवेचन करनेपर हमें बुद्धिके अन्तर्गत निम्नाङ्कित तत्त्व दृष्टिगत होते हैं—बुद्धि एक सार्वभौम क्षमता है तथा १. इस क्षमताके द्वारा व्यक्ति उद्देश्यपूर्ण कार्य करनेमें समर्थ होता है; २. बुद्धिमान् व्यक्तिका चिन्तन-कार्य भी अत्यन्त तर्कपूर्ण होता है; तथा ३. ऐसा व्यक्ति अपने वातावरणके साथ उचित एवं प्रभावपूर्ण ढंगसे अभियोजन स्थापित करनेमें सहज समर्थ होता है। यद्यपि बुद्धिकी यह कोरी व्यावहारिक एवं भौतिकवादी परिभाषा है तथापि इस दृष्टिसे भी श्रीहनुमान्जी बुद्धिमानोंमें अग्रगण्य हैं। जहाँतक प्रथम दो क्षमताओंका प्रश्न है, उनका साङ्गोपाङ्ग उल्लेख पूर्वकी पंक्तियोंमें, किसी-न-किसी रूपमें हो चुका है। उनपर पुनर्विचार करना यहाँ अभीष्ट नहीं। उनकी पुनः पुष्टिके लिये केवल दो-एक उद्धरणोंको प्रस्तुत कर देना पर्याप्त होगा। जनकनन्दिनी सीताजीका पता लगानेके क्रममें श्रीहनुमान्जीको सुरसा, लंकिनी एवं सिंहिकाके रूपमें क्रमशः सत्त्वगुणी, रजोगुणी एवं तमोगुणी—तीन प्रकारकी मायासे संघर्ष करना पड़ा और तीनोंपर ही उन्होंने विजय प्राप्त की। सत्त्वगुणी मायाको उन्होंने जीवित छोड़ दिया; क्योंकि वह देवताओंकी माँके रूपमें पूजनीया थी। रजोगुणी लंकिनीको भी उन्होंने जीवन-दान दिया, परंतु मुष्टिका प्रहार करके—यह भी न्यायोचित था। परंतु तमोगुणी सिंहिकाका वध करना अत्यावश्यक था। दण्डका यह न्यायोचित एवं क्रमिक विधान देखकर जो आकाशवाणी हुई उससे श्रीहनुमान्जीकी उद्देश्यपूर्ण कार्य करनेकी अपूर्व क्षमताका संकेत मिलता है—

यस्य त्वेतानि चत्वारि वानरेन्द्र यथा तव।
धृतिर्दृष्टिर्मतिर्दाक्ष्यं स कर्मसु न सीदति॥
(वा० सु० १। २०१)

अर्थात् 'हे वानरेन्द्र ! तुम्हारे समान जिस पुरुषमें धीरता, सूझ, बुद्धि और दक्षता—ये चार गुण हैं, वह कभी अपने कार्यमें असफल नहीं होता।' इस प्रकारके अनेक उदाहरण हैं, जिनसे यह प्रमाणित होता है कि श्रीहनुमान् कार्योंको सम्पन्न करनेमें अति दक्ष थे। इतना ही नहीं, उनकी लंकाकी आद्योपान्त यात्राके यदि प्रत्येक कार्यका विवेचन किया जाय तो स्पष्ट प्रतीत होगा कि श्रीहनुमान्जीने 'उद्देश्यपूर्णता' का जो व्यापक अर्थ समझ लिया था, वह अन्यत्र सम्भव नहीं। उन सबका साङ्गोपाङ्ग उल्लेख करना यहाँ सम्भव नहीं। संक्षेपमें ही उन सत्कृत्योंका अवलोकन करना यहाँ पर्याप्त होगा।

बाह्यदृष्टिसे विचार करनेपर तो यही प्रतीत होता है कि जनकनन्दिनी सीताजीका पता लगा लेना ही उनका एकमात्र उद्देश्य था। यदि ऐसी बात थी तो सीताका पता प्राप्तकर अशोक-वाटिकासे ही उन्हें वापस लौट आना चाहिये था। फिर (क) अशोक-वाटिकाको नष्ट-भ्रष्ट करनेका क्या प्रयोजन ? (ख) स्वर्ण-रचित लंकाको भस्मसात् करनेका अभिप्राय क्या था ? (ग) पुनः सीतासे मिलकर चूडामणि लेनेके लिये क्यों बाध्य होना पड़ा ? आदि प्रश्नोंपर विचार करनेपर प्रतीत होगा कि इन प्रत्येक कार्यके पीछे कोई-न-कोई व्यापक

उद्देश्य था। शत्रुकी परम प्रिय अशोकवाटिकाको नष्टकर एवं देव-दुर्लभ उसकी स्वर्णिम लंकाको भस्मसात् कर रामकी महान् शक्तिका परिचय करा देना आवश्यक था, जिससे सीताको बल मिले एवं रावणका हृदय दहल जाय। हुआ भी ऐसा ही। यहाँ भी महान् उद्देश्यकी पूर्ति हुई। परंतु यह सब कुछ सम्पादित करके सीताजीका पुनः दर्शन करना आवश्यक हो गया। 'लंका-दहनके समय महारानी सीताजीको भी कहीं आँच तो नहीं लग गयी?' इस चिन्ताका निवारण करना आवश्यक था। अन्यथा रामके पास कौन-सा संवाद लेकर जाते। सीताविहीन रामका जीवन शून्य हो जाता। फिर पापाचारी रावणका वध कैसे होता? अतः सीता जीवित —सुरक्षित हैं—पता लगाना आवश्यक हो गया। उद्देश्य-पूर्ण कार्य करनेकी कैसी अपूर्व प्रणाली थी श्रीहनुमान्जीमें!

तर्कपूर्ण चिन्तन करनेमें भी वे अद्वितीय थे। एक दृष्टान्त लिया जाय। रावणके शयनकक्षमें सर्वाभरण-भूषिता मन्दोदरीको रूप-यौवन-सम्पत्तिसे युक्त देख उसीको सीता समझकर एक क्षणके लिये हनुमान्जी अति आनन्दित होते हैं। परंतु उनकी बुद्धि तत्काल ही एक पुष्ट तर्क उपस्थित करती है—

न रामेण वियुक्ता सा स्वप्तुमर्हति भामिनी।
न भोक्तुं नाप्यलंकर्तुं न पानमुपसेवितुम्॥
नान्यं नरमुपस्थातुं सुराणामपि चेश्वरम्।
न हि रामसमः कश्चिद्विद्यते त्रिदशेष्वपि॥
(बा० सु० ११। २-३)

अर्थात् 'सीतादेवी श्रीरामके विरहमें कभी भी शयन, भोजन-पान नहीं कर सकतीं और न कभी कुछ अलंकार ही धारण कर सकती हैं। चाहे कोई साक्षात् देवता ही क्यों न हो, सीताजी कभी भी पर-पुरुषपर दृष्टि नहीं डाल सकतीं; क्योंकि देवताओंके मध्य भी श्रीरामचन्द्रजीके समान कोई वर्त्तमान नहीं है।' इस तरहके तार्किक चिन्तनसे उन्होंने तत्काल निष्कर्ष निकाल लिया कि मन्दोदरी कभी सीता हो ही नहीं सकती।

वेश्लर (Wechsler) नामक मनोवैज्ञानिकके अनुसार येन-केन-प्रकारेण वातावरणके साथ प्रभावपूर्ण ढंगसे अभियोजित करना भी बुद्धिका एक आवश्यक अंग है। यदि ऐसी बात है तो श्रीहनुमान्जी समयकी पुकारपर इस प्रकारका आचरण प्रस्तुत करनेमें भी कभी पीछे नहीं रहे। अपने उद्देश्यपूर्ण कार्यकी सफलताके लिये उन्होंने शठबुद्धिका भी आश्रय ग्रहणकर वातावरणके साथ अपनेको सफलतापूर्वक अभियोजित किया है। सुग्रीवके आदेशानुसार, रामके साथ प्रथम साक्षात्कारके समय उन्होंने इसी प्रकारकी बुद्धिका आश्रय लिया—

कपिरूपं परित्यज्य हनुमान्मारुतात्मजः।
भिक्षुरूपं ततो भेजे शठबुद्धितया कपिः॥
(बा० कि० ३। २)

इस प्रकार अनेक स्थलोंपर उन्होंने कपटबुद्धि (राजनीति) का आश्रय ग्रहणकर वातावरणके साथ अपनेको अभियोजित किया है। लंकामें अनेक रूपोंको धारणकर, उन्होंने अभियोजनशीलताके ही गुणका प्रदर्शन किया है।

अतः वानराकार-विग्रह पुरारी श्रीहनुमान्जीके विषयमें भारतीय ग्रन्थकारोंने जो विशद विवरण उपस्थित किया है, उससे यही निष्कर्ष निकलता है कि ज्ञानके क्षेत्रमें वे अग्रणी थे। बल्कि निधान तो वे थे ही। इतना ही नहीं, मनोवैज्ञानिकों-ने जो बुद्धिकी व्याख्या प्रस्तुत की है, उसके अनुसार भी श्रीहनुमान्जी उच्च कोटिके बुद्धिमानोंकी श्रेणीमें आ जाते हैं। इसे सप्रमाण दिखाया जा चुका है। श्रीहनुमान्जीके इसी सर्वगुण-सम्पन्नताके कारण स्वामी विवेकानन्दने प्रत्येक भारतीयको, चाहे वह देशमें रहता हो अथवा विदेशमें, हनुमान्जीको ही आदर्श मानकर आचरण करनेका सत्परामर्श दिया था। आज हमारा सबसे बड़ा दुर्भाग्य यही है कि हम अपने देशके महच्चरित्रोंको भूल रहे हैं, उनके आदर्शोंको विस्मृत कर रहे हैं। अज्ञानतावश, उन्हें व्यंग्य एवं विनोदका विषय मानकर गौरवका अनुभव करते हैं। इतनेपर भी भारतीय संस्कृतिका अपकार नहीं हुआ—आश्चर्य है। अस्तु, यदि भारतीय संस्कृति, स्वातन्त्र्य एवं मर्यादाको अक्षुण्ण रखना है तो प्रत्येक देशवासीको तेज, धृति, यश, निपुणता, सामर्थ्य, विनय, नय, पौरुष, विक्रम, बुद्धि आदि परमोदात्त गुणोंसे युक्त श्रीहनुमान्जीको आदर्श मान उनके पदचिह्नोंपर चलना होगा। आज स्वदेशके चारों ओर शस्त्रास्त्रसे सुसज्जित एवं अनुकूल क्षणकी प्रतीक्षामें खड़े आक्रामकोंकी लंकामें प्रवेश कर उसे भस्मसात् करना होगा।

भक्तिसाधनाका मनोविज्ञान

(मूल लेखक—श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती)

[अनुवादक—अनन्तश्री स्वामीजी अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज]

[गताङ्क पृष्ठ ९०३ से आगे]

(षष्ठ अमृतवृष्टि)

पाँचवीं अमृतवृष्टिमें जिसके स्वरूपका निरूपण किया गया है, वही भजन-विषयक रुचि अत्यन्त प्रौढ़तम होकर जब भजनीय भगवान्‌को अपना विषय बनाती है, तब आसक्तिके नामसे कही जाती है। भक्तिरूप कल्पलताका मुकुल है यही—आसक्ति। इसीसे भाव और प्रेमरूप पुष्प तथा फल शीघ्र ही प्रकट हो जायँगे। यह सूचना मिल जाती है। भजनमें रुचि होती है और भगवान्‌में आसक्ति—यह बात केवल प्रधानताकी दृष्टिसे कही जाती है। वस्तुतः दोनों ही दोनोंको विषय करती हैं। अब प्रौढताके कारण रुचि कहते हैं और अप्रौढताको आसक्ति। आसक्ति ही अन्तःकरणके दर्पणको ऐसा परिमार्जित—परिष्कृत कर देती है कि एकाएक उसमें भगवान् प्रतिबिम्बित होने लगते और प्रत्यक्षसे दीखने लगते हैं। भक्तिकी पूर्वदशामें जब भक्त देखता है—हाय! हाय! हमारे चित्तपर विषय आक्रमण कर रहे हैं, तब वह उसे भगवान्‌में लगा लेता है। संकल्प करता है और प्रायः उसका मन भगवान्‌के रूप, गुण आदिमें प्रविष्ट हो जाता है; परंतु जब आसक्तिका उदय हो जाता है, तब किसी प्रकारका प्रयत्न या संकल्प करनेके पूर्व ही अपने-आप उसका मन भगवान्‌में लग जाता है। जैसे प्रारम्भिक भक्तको इस बातका पता नहीं चलता कि उसका मन भगवद्भजनसे निकलकर संसारमें कब चला गया। वैसे ही आसक्ति होनेपर भक्तको इस बातका पता ही नहीं चलता है कि उसका मन सांसारिक बातोंसे निकलकर भगवान्‌के रूप, गुण, लीलादिमें कब चला गया। आसक्तिकी यह दशा आसक्त पुरुषको ही अनुभवमें आती है। अनासक्त पुरुष इसको नहीं समझ सकता।

ऐसा भक्त प्रायः सबमें भक्तिभावका ही दर्शन करता है। प्रातःकाल सामनेसे किसीको आते देखकर भक्तजी पहुँच गये और बोले—'ओहो! आपके कण्ठमें श्रीशालग्रामकी शिलाका सम्पुट है। आपकी रसना प्रतिपल पुनः-पुनः श्रीकृष्णनामामृतका आस्वादन कर रही है। आपका दर्शन ही मुझ अभागेको भगवत्प्रेम और भजनके लिये उत्साहित कर रहा है। बताइये, आप किन-किन तीर्थोंमें गये। किन-किनके दर्शन किये! क्या-क्या भगवत्सम्बन्धी अनुभव हुए? धन्य है, धन्य है! आप तो अपनेको और जगत्‌को कृतार्थ कर रहे हैं।' इस प्रकार आगन्तुकसे संलापपीयूषका कुछ क्षणतक पान कर भक्तराज आगे बढ़ते हैं। किसी औरको देखकर कहते हैं—'ओहो! आप अपनी वेष-भूषा और कक्षनिक्षिप्त मनोहर पुस्तक-लक्ष्मीसे बड़े विद्वान् मालूम पड़ते हैं। आप दशमस्कन्धका एक श्लोक सुना दीजिये और उसकी अर्थामृतवर्षासे हमारे श्रोत्रचातकको जीवन-दान दीजिये।' इस प्रकार भागवतकी व्याख्यासे भक्तके शरीरमें रोमाञ्च होने लगता है।

इसके बाद भक्तराज दूसरी ओर चलते हैं और देखते हैं कि 'अहो! यह तो सभाकी सभा ही मेरे समस्त दुष्कृतका ध्वंस करनेवाली है।' ऐसा कहकर दण्डवत् प्रणिपातपूर्वक प्रणति-विनतिमें संलग्न हो जाते हैं। परम भक्त विद्वान् सभापति आदर करने लगते हैं और ये संकोचसे सिकुड़कर कहीं पास ही बैठ जाते हैं। कहते हैं कि 'भिषक्शिरोमणि आप तो त्रिभुवनको जीवनदान देनेवाले हैं और भवरोगके महावैद्य हैं। इस महादीन अधमकी भी नाड़ी पकड़कर देखिये और रोगका निदान कीजिये। मेरे लिये पथ्य-औषध बताइये। किसी महा-रसायनका प्रयोग करके मेरी अभीप्सा पूर्ण करनेवाली सम्पुष्टि आप सम्पन्न कर दीजिये।' भक्तजीकी आँखोंसे आँसुओंकी झड़ी लग जाती है। कृपादृष्टि और मधुर वाणीके निस्पन्दसे वे आनन्दित हो जाते हैं और वहीं पाँच-छः दिन निवास करके फिर आगे बढ़ते हैं।

भक्तजी अपने आनन्दमें मग्न घूमते-फिरते कभी जंगलमें पहुँचते हैं। देखते हैं सामनेसे बड़ी दूर कोई कृष्णसार मृग आ रहा है। मन-ही-मन सोचने लगते हैं यदि भगवान् श्रीकृष्णकी मुझपर कृपादृष्टि है तो यह हरिण तीन-चार पग मेरी ओर आये—नहीं तो, मेरी ओर पीठ करके जाये। इस प्रकार वह नैसर्गिक मृग-पशु-पक्षी-चेष्टाको भगवान्‌के अनुग्रह और निग्रहकी पहचान बना लेता है। कभी अनुकूल

अनुभव करके सुखी होता है और कभी प्रतिकूल अनुभव करके दुखी। किंतु होते हैं उसके सब अनुभव भगवान्‌से सम्बद्ध। भक्त कभी-कभी किसी गाँवके पास पहुँचता है और देखता है छोटे-छोटे ब्राह्मण बालक खेल रहे हैं। उसके मनमें आता है अहो! कहीं सनक, सनन्दन, सनत्कुमारादि ही तो नहीं आ गये हैं, जाकर बड़े आदरसे पूछता है—'आपलोग कृपाकर मुझे बताइये श्रीव्रजराज-कुमारकी प्राप्ति मुझे कब होगी?' अब वे बालक कुछ भी बोल देते हैं या नहीं बोलते हैं तो वह उनकी चेष्टा और भाषणमें दुर्बोधता या सुबोधताकी कल्पना करके व्याकुल या आनन्दित हो जाता है।

कभी-कभी वह अपने घरमें बैठा-बैठा भी अपार धनके लोभी कृपण वणिक्‌के समान सोचने लगता है कि 'मैं कहाँ जाऊँ? क्या करूँ? क्या करनेसे मेरी अभीष्ट वस्तु हाथ लगेगी?' इस प्रकार कभी उसका मुँह मुरझा जाता है। कभी सोचता है, कभी सोता है, कभी उठता है, कभी बैठता है। सगे-सम्बन्धी पूछते हैं—'भाई! तुम्हें क्या हो गया है?' तब वह गूँगेकी तरह हो जाता है। कभी अपने भावको छिपा लेता है। 'अरे! कुछ तो नहीं।' भाई-बन्धु कहते हैं कि इसकी बुद्धि ढक गयी।' पड़ोसी कहते हैं कि 'यह जड हो गया।' मीमांसक कहते हैं, 'अरे! यह तो मूर्ख है।' वेदान्ती कहते हैं—'यह भ्रान्त है।' कर्मी कहते हैं—'भ्रष्ट।' भक्तलोग कहते हैं कि 'इसे सर्वश्रेष्ठ सबसे मूल्यवान् पदार्थकी प्राप्ति हो गयी है।' परंतु अपराधी लोग हमेशा ही कहते हैं—'यह तो दम्भी है।' भक्तको मान-अपमानका विचार सर्वथा नहीं है। वह भगवदासक्तिकी भागीरथीके प्रवाहमें आमूलचूल आमज्जन-निमज्जन कर रहा है। वस्तुतः उस भक्तके हृदयमें भगवान्‌की आसक्ति क्रीड़ा कर रही है।

(सप्तम अमृतवृष्टि)

जब वही आसक्ति सर्वोत्कृष्ट परिणामको प्राप्त होती है, तब उसका नाम 'रति' अथवा 'भाव' होता है। यह भाव ही भगवान्‌की स्वरूपभूत सच्चिदानन्दमयी शक्तियों-का कन्दलीभाव अर्थात् मुकुलित रूप है। इसीको भक्ति-कल्पलताका उत्फुल्ल प्रसून कहते हैं। इसका बहिरंग सौन्दर्य भी देव-दुर्लभ है। अन्तरङ्ग सौन्दर्य तो मोक्षको भी तृण बना देता है। इसका एक परमाणु भी समस्त तमका उन्मूलन कर देता है और इसका फैलता हुआ सौरभ मधुसूदन श्रीकृष्ण-भ्रमरको भी प्रणयनिमन्त्रण देकर ले आता है और उनको प्रकट करनेमें समर्थ है। बहुत कहाँतक कहें, इन्हीं भावोंसे सौरभित पल-पलमें उदय होनेवाली चित्तवृत्तिरूप तिलपंक्तियाँ द्रवित होकर तत्काल सम्पूर्ण भगवदङ्गको स्निग्ध बनानेकी योग्यता रखती है। यह भाव प्रकट होते ही अपने आधार श्वपचको भी ब्रह्मारुद्रेन्द्रवन्दित बना देता है। इस भावके प्रकाशमात्रसे ही भक्तके दोनों नेत्र केवल व्रजेन्द्रनन्दनके अनङ्ग-तिरस्कारी अङ्गोंकी ही श्यामलता, उनके अधर, नेत्रकोण आदिकी ही लालिमा, उनके मुख-मुसकान-चाँदनीकी ही श्वेतिमा, उनके वस्त्राभूषणकी ही पीतिमाका आस्वादन करनेके लिये अत्यन्त उत्कण्ठित एवं रसीले हो जाते हैं तथा अजस्र अश्रुबिन्दुओंसे अपने-आपका अभिषेक करने लगते हैं।

इस भावके उदय होते ही क्षण-क्षणमें, कण-कणमें, जीवन वन तथा रण-मरणमें भी स्थान-स्थानपर केवल उनकी मुरलीका ही मधुर-मधुर संगीत, उनके कंकण-किंकिणि-नूपुरकी रुन-झुन, उनके कण्ठका कलालाप, उनके चरण-कमलकी सेवाका आदेश और उनकी किसी भी लीलाका कुण्डलीकरण स्थिर खड़े होकर चाहने लगते हैं। अहो! कैसा है उनके करपल्लवका स्पर्श, मानो अभी अनुभव हो रहा हो, शरीर रोमाञ्चित हो जाता है। नासिका-युगलको ऐसा अनुभव होता है, मानो उन्हींके अङ्गका सौरभ्य मिल रहा हो। वे क्षण-क्षणमें प्रफुल्ल होते हैं और लंबी साँस ले-लेकर पहचानते हैं। कभी-कभी रसना 'हाय! हाय! मुझे उस अधर-सुधाका रसास्वादन कभी प्राप्त होगा क्या!' ऐसा सोचती है और मानो अभी-अभी उपलब्ध हो रहा है, इस भावसे उल्लसित होकर ओष्ठ और अधरोंको चाटने लगती है। कभी-कभी हृदय स्फूर्तिमें उनको प्राप्त करके हृष्ट होता है। कभी उनके माधुर्यास्वादनकी सम्पत्तिसे मतवाला हो जाता है, कभी उनके तिरोभावसे विषादग्रस्त होता है। उन्हींके लिये कभी खिलता है—कभी मुरझाता है। इस प्रकार संचारि भावोंसे अपनेको अलंकृत करता हुआ शोभायमान होता है। बुद्धिका यह दृढ़ निश्चय हो जाता है कि यही एकमात्र अविनाशी परमार्थ है। जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति—सब दशामें उसकी स्मृतिपथमें ही पथिक रहनेका निश्चय करता है। भगवत्सेवाके लिये उपयोगी सिद्ध देहका उदय होने लगता है

और अहंता उसीमें प्रविष्ट होती हुई-सी प्रायः साधक—शरीरका परित्याग-सा करने लगती है। ममता उसके चरणारविन्द-मकरन्दकी मधुकरी होना चाहती है। वह भक्त अपने भावको जनतासे वैसे ही गुप्त रखना चाहता है, जैसे कोई कृपण मिले हुए महारत्नको। फिर भी उसके जीवनमें शान्ति, वैराग्य आदि सद्गुण आकर जम जाते हैं। इसलिये सुधी-साधु-सज्जनोंकी गोष्ठीमें उसकी पहचान हो जाती है।—क्यों न हो, चमकता हुआ ललाट ही छिपे हुए धनीको सूचित कर देता है। दूसरे लोग तो उसे विक्षिप्त अथवा उन्मत्त ही समझते हैं, इसीलिये वह लोगोंसे पहचाना नहीं जाता।

वह भाव दो प्रकारका होता है—एक रागा भक्तिसे उत्थित और दूसरा वैधी भक्तिसे। पहले भावकी जाति और प्रमाणमें अधिकता होती है। वह माहात्म्यज्ञानका अनादर कर देता है और सामान्यकी अपेक्षा अधिक विशेष होता है। साथ ही गम्भीर एवं अटूट अर्थात् प्रगाढ़ होता है। दूसरा भाव पहले-पहल कुछ न्यून होता है और ऐश्वर्य-ज्ञानसे विद्ध ममतासे युक्त होनेके कारण उतना प्रगाढ़ नहीं होता। ये दोनों ही प्रकारके भाव माधुर्य एवं ऐश्वर्यकी वासनासे युक्त भक्त-हृदयमें प्रकट होकर दो प्रकारसे आस्वाद्य होते हैं। जैसे एक ही मिठास आम, कटहल, गन्ना और अंगूर आदिमें प्रविष्ट होकर भिन्न-भिन्न प्रकारके रसास्वादका हेतु बनती है, वैसे ही यह भाव भी हृदयभेदसे नाना रूप धारण करता है।

वे भक्त शान्त, दास, सखा, माता-पिता और प्रेयसी-भाववाले पाँच प्रकारके होते हैं। शान्तोंमें शान्ति, दासोंमें प्रीति, सखाओंमें सख्य, माता-पितामें वात्सल्य और प्रेयसी-भाववालोंमें प्रियता रहती है। यह केवल नामका भेद है। यही भाव अपनी शक्तिसे ही विभाव, अनुभाव, व्यभिचारी, संचारी—सबको प्रकट कर देता है। फिर प्रकृतिसे उद्भूत ऐश्वर्य होकर आत्मा अथवा राजाके समान स्थायी हो जाता है और विशेषताको प्राप्त होकर उनके साथ शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और उज्ज्वल—नामके पाँच रसोंके रूपमें प्रकट होता है। स्वयं श्रुति भगवतीने 'रसो वै सः।' इस रूपमें इसीका वर्णन किया है। इसीके सम्बन्धमें यह बात कही गयी है, कि 'रसं ह्येवायं स लब्ध्वा आनन्दी भवति' इसी रसकी उपलब्धिसे ही जीव आनन्दी होता है। यह रस दूसरे अवतार या अवतारीमें सम्भव होनेपर भी कहीं भी पूर्णताको प्राप्त नहीं होता। स्वयं व्रजेन्द्रनन्दनमें ही अपनी पराकाष्ठापर पहुँचता है। जैसे नद, नदी, तड़ाग आदिको जलनिधि कहना शक्य होनेपर भी वास्तविक जलनिधित्व समुद्रमें ही है। यह रस भावकी प्रथम परिणतिमें ही प्रेमके आविर्भावमात्रसे मूर्त्त हो जाता है और स्थायी भावयुक्त भावुक भक्तके द्वारा साक्षात् अनुभव किया जाता है।

(शेष आगे)

सबके अंदर सोये देवको जगा दो

सबको शुभ संकेत सदा दो, सबको दो नित सद्व्यवहार।
सबके अंदर सुप्त देवको तुरत जगा, कर दो साकार॥
देखो सदा दूसरोंमें सद्गुणों, भले भावोंको नित्य।
स्नेहदान दे, मुक्तकण्ठसे करो प्रशंसा, उनकी सत्य॥
सबमें भरे श्रेष्ठ सद्गुण हैं, पर हो पाया नहीं विकास।
प्रोत्साहन दे, उन्हें जगाओ, नित्य बढ़ाओ शुचि विश्वास॥
तुरत निराशा दूर करो सब दैन्य हीनता दे उत्साह।
उपजा दो मन उच्च स्तरके सफल श्रेष्ठ जीवनकी चाह॥
प्रभुपर हो विश्वास नित्य दृढ़, ऐसा करो पवित्र प्रयास।
जिससे हो सत्वर मानवमें मानवताका दिव्य प्रकाश॥

मनसे दुःखद बातोंको कैसे हटाया जाय ?

(लेखक—पं० श्रीलालजीरामजी शुक्ल एम्० ए०)

प्रोफेसर शैंडके अनुसार मनुष्यके मूल संवेग दो ही हैं—एक आनन्द और दूसरा दुःख (Joy and Sorrow) । इन्हींके विभिन्न प्रकारके मिश्रणसे दूसरे-दूसरे प्रकारके संवेगोंकी उत्पत्ति होती है। व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिक ब्रुक्सके अनुसार भी आनन्द और दुःख (Delight and distress) में दो ही मूल संवेग हैं। एक प्रिय है और दूसरा अप्रिय। इन्हींके अनेक प्रकारके परिवर्तनोंसे अन्यान्य विभिन्न प्रकारके संवेग बनते हैं। यह परिवर्तन प्राणीके वातावरणके सम्पर्कसे होता है। जैसे-जैसे बालक बढ़ता है, एकसे अनेक संवेगोंकी उत्पत्ति होती है।

सुख किसी लाभके विचारसे उत्पन्न होता है और दुःख हानिके विचारसे। संसारके बाहरी पदार्थ आते-जाते ही रहते हैं, अतएव वे मनुष्यको सदा उद्विग्न-मन बनाये रखते हैं। आने-जानेवाले पदार्थोंसे जितना उद्विग्नमन बालक होते हैं, उतने प्रौढ़ व्यक्ति नहीं होते। जो व्यक्ति थोड़ी-थोड़ी बातोंसे उद्विग्न-मन होता है, वह भावात्मक दृष्टिसे बच्चा ही है। मनुष्यमें वह मानसिक दृढ़ता कैसे आवे, जिससे वह छोटी-छोटी बातोंसे उद्विग्न-मन न हो।

इसके लिये पहली आवश्यकता है कि मनुष्य जान-बूझकर अपने-आपको ऐसी परिस्थितियोंमें न डाले, जिससे वह उद्विग्न होता है। भावात्मक परिपक्वता एक दिनकी वस्तु नहीं है। वह संसारकी जिम्मेदारियोंसे भाग जानेसे भी नहीं आती। कितने ही लोग किसी प्रकारकी हानिसे संसारको छोड़कर ही चल देते हैं। कभी-कभी किसी अनैतिक आचरणके कारण मनुष्य आत्मग्लानिसे पीड़ित होकर समाजसे दूर भाग जाता है। इससे उसे भावात्मक प्रौढ़ता प्राप्त नहीं होती। वह बाहर रहकर मानसिक दृढ़ता प्राप्त नहीं करता। वह बाहरसे ऋषि बन जाता है, पर भीतरसे वह बच्चा ही बना रहता है।

हमारी चिकित्सामें आये एक साधुको रोग हो गया था कि वे स्त्रियोंकी तरफ देख ही नहीं सकते थे। उनके देखनेपर उनके गुप्त अङ्गोंपर ही उनका ध्यान जाता था। इसके कारण वे स्त्री समाजमात्रके समीप नहीं जाते थे। एक दूसरा युवक किसी भी स्त्रीकी तरफ आँख उठाकर नहीं देख पाता था। उसे सदा अपनी नजर नीची रखनी पड़ती थी। एक तीसरा युवक किसी व्यक्तिसे आमने-सामने होकर बातचीत नहीं कर पाता था। इन सभी लोगोंके मनमें पापभावनाकी मानसिक ग्रन्थियाँ उपस्थित थीं, जो बचपनके निन्द्य कार्योंके कारण उत्पन्न हो गयी थीं। इन लोगोंके बचपनके संस्कारोंका अध्ययन किया गया। इन्होंने अपने कुकृत्योंकी आत्म-स्वीकृतियाँ कीं। इसके परिणामस्वरूप उनके मनका भार हलका अवश्य हो गया, परंतु उनका रोग पूर्णतः नहीं गया। ये रोग कामवासनासम्बन्धी अनैतिक आचरणके कारण उत्पन्न हो गये थे। इन व्यक्तियोंकी नैतिक धारणा ही इन्हें त्रास दे रही थीं।

उक्त प्रकारके त्राससे बचनेके लिये जो मार्ग इन लोगोंने अपनाया था, वह था पलायनवादका। किसी प्रकारके दुराचरणके बाद होनेवाली आत्मग्लानिके कारण जब मनुष्य उस वातावरणसे ही भाग जाता है, जिसमें उसने कोई कुकृत्य किया है और जब वह इस दुःखद घटनाको भुलानेकी चेष्टा करता है तो उसका मन विभाजनकी सुव्यवस्थामें हो जाता है। मानसिक एकीकरणकी अवस्थामें जो भी दुःख मनुष्यको होते हैं, उनका वह कारण जानता है और वह उनके निवारणका उपाय भी सोचनेका सामर्थ्य रखता है। परंतु मानसिक विभाजनकी अवस्थामें मनुष्य न तो अपने त्रासका कारण जानता है और न दुःखसे मुक्त होनेका मार्ग ही वह सोच पाता है। अतएव वह अपने दुःखसे मुक्त नहीं हो पाता।

किसी भी मानसिक रोगका ठीक उपचार तभी होता है, जब मनुष्य मानसिक परिपक्वता प्राप्त करे। इसके लिये उसे उसी वातावरणमें रहना पड़ता है, जिससे डर कर वह भाग गया हो। उक्त साधुको समस्त स्त्री-वर्गकी सेवा करनेका काम बताया गया। वे कुशल वैद्य हैं। अतएव उन्हें स्त्रियोंकी तथा उनके बच्चोंकी चिकित्साका काम सुझाया गया। दूसरे रोगीको अपनी माता और बहिनोंकी सेवा करनेकी बात बतायी गयी और तीसरेको इसी प्रकार नौकरी करके दूसरे लोगोंके पोषण करनेका आदेश दिया गया। इससे उन सभी लोगोंका मानसिक रोग जाता रहा।

किसी प्रकारके दुःखकी समाप्ति दुःखके कारणको भुला-

कर नहीं, वरं उसका सामना करनेसे ही होती है। मनुष्यकी भावात्मक वृत्तियों और ज्ञानात्मक वृत्तियोंमें विरोधका सम्बन्ध है। भावोंपर जितना विचार किया जाता है, उतने ही वे कम हो जाते हैं। यदि मन किसी दुःखद घटनाको प्रयत्न करनेपर भी नहीं छोड़ता तो उसे फिर मनसे हटानेका प्रयास न कर और भी उसीको याद करना ठीक है। जो विचार बरबस मनमें आता है, वही मनको दुःख देता है। जिस विचारको जान-बूझकर मनमें लाया जाता है, वह मनको दुःख नहीं देता।

दुःखद घटनाओंके प्रति साक्षी भावका अभ्यास करना भी उनकी दुःखरूपताको समाप्त करना है। जब किसी घटनाकी दुःखरूपता चली जाती है तो वह बाह्य विचारके रूपमें हमारे सामने नहीं आती। जिस विचारसे मनुष्यका मन डरता है, वह दुःखरूप बनकर आता है। जिस विचारका वह सामना करता है, वह उसका मित्र बन जाता है। डर ही किसी व्यक्तिको अथवा विचारको वह शक्ति देता है, जिससे वह हमें त्रास दे सके। साक्षी भावके रखनेसे मनुष्यके सभी भुलाये हुए विचार चेतनाके स्तरपर आ जाते हैं। बहुत-से विचार चेतनाके स्तरपर आते ही समाप्त हो जाते हैं और दूसरोंपर विचार किया जा सकता है। वे प्रतिभावनाके अभ्याससे समाप्त हो जाते हैं।

एडवर्ड कारपेन्टरने अपनी 'विज़िट टू ए ज्ञानी' नामक पुस्तकमें बताया है कि अप्रिय विचारको तत्कालके लिये मार दो, फिर उसके द्वारा जो कुछ करना चाहते हो करा सकते हो। किसी भी समस्याको थोड़े समयके लिये चेतनासे अलग कर देना उस समस्याके हलमें बाधा नहीं डालता है वरं उसका हल सुगम कर देता है। हमारा अचेतन मन चेतन मनसे कहीं अधिक सामर्थ्यवान् है। अचेतन मनके सामर्थ्यमें विश्वास करके किसी भी दुःखद घटनाको यदि हम भुला दें तो फिर दुःख समाप्त हो जाता है। दुःखकी उपस्थिति मनकी पराधीन अवस्थामें ही होती है। मनकी स्वाधीन अवस्थामें वह समाप्त हो जाता है। स्पिनोजाके इस कथनमें मौलिक सत्य है कि उद्वेग मानसिक परावलम्बनकी अवस्था है (Passion is a passive state of the mind) स्वावलम्बनकी अवस्थामें उद्वेग नहीं रहता। शौर्य (Virtue) सक्रिय (active) मानसिक अवस्था है (Virtue is an active state of the mind) यही कारण है कि निकम्मे लोगोंको ही सभी प्रकारकी मानसिक दुर्बलताएँ आ जाती हैं।

मनुष्यके भावोंकी, चाहे वे दुःखद हों अथवा सुखद, समाप्तिका एक उपाय उनका स्थानान्तरीकरण है। मनुष्यके भाव किसी-न-किसी पदार्थपर आरोपित होते ही रहेंगे। जिस पदार्थपर वे आरोपित होते हैं, वह प्रिय लगने लगता है। फिर जब उसका अभाव होता है तो मनुष्यका मन दुःखकी अवस्थामें पहुँच जाता है। अतएव अपने भावोंको किसी दूसरे पदार्थपर लगा देना मानसिक स्वास्थ्यके लिये हितकर होता है। कला, कविता, साहित्य भावोंके स्थानान्तरणके उपाय हैं। इससे भावोंका प्रवाह होकर मनुष्यको मानसिक शान्ति मिलती है। कालिदासके जब भावोंका दमन हुआ तो वह मानसिक संतापमें पड़ गया। परंतु जब उसने अनेक साहित्यिक रचनाएँ की तो उनके भावोंका उदात्तीकरण हो गया।

नये रचनात्मक काममें लग जानेसे मनुष्यके भाव नयी दिशामें प्रवाहित होने लगते हैं। जब मनुष्य नयी रचना करता है तो उसे विशेष प्रकारका आत्मसंतोष होता है। वह अपने आपमें नये आत्मविश्वासकी अनुभूति करने लगता है। प्रत्येक प्रकारकी हानि मनुष्यके आत्मविश्वासको घटाती है और प्रत्येक प्रकारका लाभ उसके आत्मविश्वासको बढ़ाते हैं। जिस मनुष्यका आत्मविश्वास बना हुआ है, वह किसी दुर्घटनासे घबराता नहीं। वह उसका सामना करता है।

किसी प्रकारकी हानिके बारेमें देरतक सोचना हानिकी मनोवृत्तिको बढ़ाना है। इससे मनुष्य निराशामें पड़ जाता है और उसे असफलताके ही आत्म-निर्देश मिलने लगते हैं। मनुष्यको असफलताके विचारको जितनी जल्दी हो, छोड़कर किसी रचनात्मक कार्यमें लग जाना चाहिये। रचनात्मक कार्य पहले-पहल छोटा ही होना अच्छा है, जिससे वह शीघ्रतासे पूरा हो जाय। एक कामके पूरे होनेपर दूसरे कामको पूरा करनेका सामर्थ्य अपने-आप ही आ जाता है। किसी भी कामका बाहरी लाभ कुछ भी हो, उसका भीतरी लाभ यह होता है कि वह मनुष्यको निकम्मेपन और निराशाकी मनोवृत्तिसे उठाकर सचेष्ट बना देता है। जो व्यक्ति किसी-न-किसी प्रकारके काममें लगा है, वह कालान्तरमें बहुत बड़ा काम करनेमें समर्थ होता है।

बड़ी वियोगवेदनाके पश्चात् आनन्द-प्रेम-सुधासिन्धु प्रियतम श्यामसुन्दरके एकान्तमें दर्शन पाकर श्रीराधाजी उनके चरण पकड़कर बैठ गयीं और कहने लगीं—

मेरे इस प्रणको सुन लो
हे मेरे प्राण-प्राण सर्वस्व ।
छोड़ूँगी अब मैं न परम निधि
बहुत दिनोंपर मिली निजस्व ॥

हे प्राणोंके प्राण, मेरे सर्वस्व ! मेरे इस प्रणको सुन लो । बहुत दिनोंके बाद मेरे अपने परम निधिरूप तुम मुझे मिले हो, अब मैं तुमको कभी नहीं छोड़ूँगी ।

तुम मैं एक हृदय हैं दोनों,
एक प्राण हैं दोनों नित्य ।
जान रही मैं इसे—यही है
हम दोनोंका तात्त्विक सत्य ॥
पर मैं नहीं जानती, नहीं बता
सकती क्यों हुआ वियोग ?
अति संतप्त जल रही थी
कर रही भयानक पीड़ा भोग ॥
यह भी सत्य, सदा देते रहते थे
तुम दर्शन-आनन्द ।
खेल रहे लीलामय तुम
छिपने दिखनेका खेल अमंद ॥

तुम और मैं नित्य एक-हृदय हैं, नित्य एक-प्राण हैं, मैं इसे जान रही हूँ । यही हम दोनों ही तात्त्विक सत्यस्वरूप हैं । परंतु मैं न तो जानती हूँ और न बतला ही सकती हूँ कि हमलोगोंका यह वियोग क्यों हो गया ? सचमुच मैं इस वियोगकी आगमें अत्यन्त संतप्त हुई जल रही थी और भयानक पीड़ा भोग रही थी। साथ ही यह भी सत्य है कि इस वियोगमें भी हे लीलामय ! तुम सदा-सर्वदा मुझे अपने मधुर दर्शनका आनन्द देते रहते थे । मानो तुम छिपने-प्रकट होनेका (आँखमिचौनीका) श्रेष्ठ खेल कर रहे थे ।

अब तो बाहर भी मैं तुमको
सहज पा गयी हूँ प्रिय ! आज ।
भीतर-बाहर, पद-तलमें अब
पड़ी रहूँगी तज सब लाज ॥
खाने, पीने, सोने, उठनेमें
मैं सदा रक्खूँगी साथ ।
कभी नहीं हटने दूँगी, मैं
नहीं हटूँगी, मेरे नाथ ! ॥
मिटी सभी ममता अग-जगसे
हुई सभीमें समता प्राप्त ।
रहा एक बस, तुममें ही
मेरा सम्बन्ध मधुर नित व्याप्त ॥
नहीं कामना भोग-मोक्षकी
किंचित् भय-लज्जा न विषाद ।
हुई मत्त पीकर मैं प्रियतम
प्रेम-सुधासद दिव्य प्रसाद ॥

अब तो हे प्रियतम ! मैं तुमको आज बाहर भी पा गयी हूँ । अतः अब बाहर-भीतर सदा ही मैं सारी लज्जा-संकोच छोड़कर तुम्हारे चरणतलमें ही पड़ी रहूँगी । खाने-पीने, सोने-उठनेमें मैं सदा-सर्वदा तुमको अपने साथ रक्खूँगी । कभी भी तुम्हें हटने नहीं दूँगी और मेरे नाथ ! न मैं ही हटूँगी । अग-जगसे (सब प्राणी-पदार्थोंसे) मेरी सारी ममता मिट गयी है । सबमें समता प्राप्त हो गयी है । अब तो मेरा बस, मधुर सम्बन्ध एकमात्र तुम्हींमें नित्य व्याप्त हो गया है । न कहीं भोग-मोक्षकी कामना रही है और न कहीं तनिक भी भय, लज्जा और विषाद ही रह गया है । मेरे प्रियतम ! मैं तुम्हारे प्रेमामृतरूप दिव्य मद —प्रसादको पीकर मत्त (पगली) हो गयी हूँ ।

प्रियतम श्यामसुन्दर बोले—

बोले प्रियतम राधे ! हम तुम
नित संयुक्त-नित्य हैं एक ।
अमिलन-मिलन रस-सुधास्वादन
कर रखते सुप्रेमकी टेक ॥

प्रियतमने कहा—राधिके ! हम-तुम दोनों नित्य ही मिले हुए हैं, नित्य ही एक हैं । यह अमिलन-मिलन (वियोग-संयोग) प्रेम सुधा-रस है, इसका आस्वादन करके हम श्रेष्ठ प्रेमकी मर्यादा-रक्षा करते हैं । प्रेमलीला करते हैं !

सिसकती लाशोंमें महकती मानवता !

(ऐतिहासिक कहानी)

(लेखक—डाक्टर श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

रात्रिका अंधकार ! एक टिमटिमाती हुई लालटेन ! हल्केसे प्रकाशमें ढीले-ढाले वस्त्र पहिने एक मनुष्य । उसके हाथमें कुछ नजर आ रहा है, किंतु साफ पहचाना नहीं जा रहा है ।

क्या है वह ? यह मनुष्य क्यों युद्धभूमिमें फिर रहा है ! यह सिसकती लाशोंमें क्या ढूँढ रहा है ?

आइये, इसे समीपसे देखें ।

पोशाकसे यह व्यक्ति पठान-सा दिखायी देता है, वही ढीली-ढाली सलवार ! लंबा मैला-सा कमीज़, सिरपर साफा और पाँवोंमें अफगानी सैण्डल ! लंबी-सी दाढ़ी और मूँछें ! उनमें बुजुर्गीके प्रतीक बर्फसे श्वेत बाल । ढलती हुई आयु ! लड़खड़ाते कदम···।

वह इसके हाथमें क्या है ? एक हाथमें लालटेन तो स्पष्ट पहचानी जाती है, पर दूसरे हाथमें क्या है ?

क्या यह कोई शस्त्र है ? क्या यह कोई दवाई है ! यह तो कोई बरतन-सा दिखायी देता है । कौन-सा बरतन है यह ? वह बड़ी सँभालकर सावधानीसे बरतनको हाथमें लिये है ।

यह तो एक लोटा है । शायद इसमें कुछ भरा है । बिखर जानेके डरसे यह धीरे-धीरे युद्धभूमिमें सिसकती लाशोंमें किसीको ढूँढ रहा है ।

वह तनिक ठोकर लगी । लोटेसे बिखरा जल ! तो पानी है इस लोटेमें । फौजी अरबके हाथमें जलसे भरा लोटा है ।

लेकिन जलसे भरे लोटेका इस युद्धभूमिमें वह क्या करेगा ? मुर्दोंसे पटी युद्धभूमिमें जलसे भरे लोटेकी क्या आवश्यकता आ पड़ी ? एक हाथमें टिमटिमाती लालटेन, दूसरेमें जलसे भरा लोटा ।

× × × ×

हजरत मुहम्मदकी मृत्युके कुछ वर्षों बाद अरबों और रूमियोंमें घनघोर युद्ध हुआ था । दोनों पक्षोंसे मुसल्मान ही युद्ध कर रहे थे । मुस्लिम इतिहासमें इस युद्धका अनेक बार उल्लेख किया गया है । इतिहासकार लिखते हैं कि इस युद्धमें प्रलय-जैसा दृश्य उपस्थित हो गया था । दोनों पक्षोंसे असंख्य अरब और रूमी लोग जिंदगीकी होली खेल बैठे । अरबों और रूमियोंमें घायलोंका तो अनुमान ही लगाना कठिन था । ऐसा लगता था कि आदमीमें शैतान जाग उठा हो । शैतानियतके निर्दय, निर्मम और रौद्र रूपने दसों दिशाओंमें हाहाकार मचा दिया हो ।

विपुल जन-संख्याकी हत्या, रक्तपात और मारकाटको देखकर ऐसा लगता था, मानो शिवका ताण्डव हो रहा हो । जैसे अनीति, अनैतिकता, उद्दण्डतासे क्षुब्ध होकर शिवने अपना विध्वंसकारी रौद्र रूप प्रकट कर लिया हो । उनके गलेमें पड़े हुए भयानक सर्प विषभरी फुसकारें हुंकार रहे हों । उनके डमरू-नादसे दसों दिशाएँ काँप रही हों । नर-मुण्डोंसे उनकी शृङ्गार-सज्जा की जा रही हो । औघड़दानीके रक्तिम खप्परमें कुछ दुष्ट पापियोंका गरम-गरम रक्त भरा हो ! शिवके प्रलयंकारी ताण्डवकी हर थिरकनमें मौतकी भीषण ज्वालाएँ उठ रही हों । उस गगनचुम्बी दावानलसे पाप, दुष्टता और समाजकी उद्दण्डता सदाके लिये दग्ध होने जा रही हो !

× × × ×

उस दिन घमासान युद्ध होता रहा । अरब और रूमी लोग खूब जमकर लड़े । उस भयंकर विभीषिकामें दोनों पक्षोंके सैकड़ों सैनिक मारे गये । हजारों घायल सिपाही मौतके कगारपर खड़े हो करुण चीत्कारसे युद्धभूमिके श्मशान-जैसे वातावरणको विक्षुब्ध कर रहे थे । युद्धस्थलमें मरे हुए सैनिकोंका रक्त बिखरा पड़ा था और सूखे रक्तकी दुर्गन्ध फैल रही थी । सैनिकोंके अङ्ग-प्रत्यङ्ग यत्र-तत्र कटे पड़े थे । मौतका अट्टहास युद्धभूमिमें दिखायी दे रहा था । मनुष्यमें जो राक्षस छिपा हुआ है, यह सब उसीकी हिंसा थी । रक्तकी क्रूर होली !!

लेकिन वे दिन मानवजीवनमें सत्य, प्रेम और न्यायसे

भी खाली न थे। दैनिक जीवन और समाजमें सात्त्विक, नैतिक नियम भी काममें आते थे। वे जनताके दैनिक जीवनके अविभाज्य अंग थे। लड़ाई होती जरूर थी, पर युद्धके उपरान्त थकनेपर रात्रिमें सैनिकोंके लिये विश्राम और चिकित्साकी व्यवस्था थी।

प्रायः दिनभर दोनों पक्षोंमें भयंकर युद्ध होता रहता, खूब जमकर लड़ाई होती, भयंकर रक्तपात चलता रहता, पर सायंकाल थके-मांदे, घायल सिपाहियोंके थके हुए या क्षत-विक्षत शरीरोंको विश्राम देनेकी व्यवस्था थी। दोनों शत्रु-पक्ष इस निर्णयमें एकमत थे कि युद्धकी रातमें किसी प्रकारका कोलाहल, उत्पात, प्रहार या धोखेबाजीसे आक्रमण न किया जाय।

प्रातःकालसे ही दोनों ओर मोर्चे बँध जाते, दिनभर खूब युद्ध होता, उसमें अनेक सिपाही सदाके लिये मौतके क्रूर जबड़ोंद्वारा चबाये जाते, किंतु सायंकाल होते-होते लड़ाई बंद होनेका बिगुल बजता। तब थके हुए सैनिक अपनी थकान उतारते या चिकित्सा कराते।

एक दिन सायंकाल ऐसे ही वह युद्ध बंद हुआ। रूमी और अरब सैनिक थके हुए थे। थके हुए सैनिक आराम करने लगे, घायलोंकी मरहम-पट्टी होने लगी। मरे हुए सैनिकोंको छोड़कर लोग चले आये। युद्धभूमिमें भीषण श्मशानकी मायूसी छा गयी।

युद्धभूमिमें मरते हुए सैनिक शारीरिक पीड़ासे अब भी कराह रहे थे। उनका दुःख-दर्द पूछनेवाला वहाँ कौन था ? अपने सगे-सम्बन्धियोंसे दूर वे मौतके सपने देख रहे थे। कुछ अन्तिम घड़ियाँ गिन रहे थे। मरनेका क्रम अब भी जारी था। जिसे देर-सबेर मरना है, उसकी कौन परवा करे !

× × × ×

इसी युद्धकी एक रातकी घटना है।

एक फौजी अरब सैनिक अपने चचेरे भाईके पुत्रको, घायल सिपाहीको युद्धस्थलमें ढूँढ़ने निकला। अपने सम्बन्धीके प्रति अचानक उसके मनमें स्नेह और ममता जाग्रत् हो उठी, जैसे मरुप्रदेशमें हरियाली !

क्रूर सैनिकोंके भी हृदय है और है उसमें प्रेम, स्नेह, भ्रातृत्व और ममताका मधुर और कोमल स्पन्दन।

फौजी अरब सिपाही उन मरी हुई, सिसकती-कलपती ठंडी और गरम लाशोंमें अपने चचेरे भाईके पुत्रका शव तलाश कर रहा था। लाशोंपर रोशनी डालकर ढूँढ़ता-भालता आगे बढ़ता जाता था। प्रायः अधिकांश लाशें निर्जीव थीं, कुछ अन्तिम श्वास ले रहे थे। जब उसका ध्यान लाशोंपर अधिक केन्द्रित हो जाता, तो उसके दूसरे हाथके लोटेका जल छलककर गिर पड़ता। वह एक-एक बूँद पानीको सँभाले हुए था।

'कहाँ है मेरा वह सम्बन्धी ! मैं उसको सँभालने आया हूँ। प्यासे लड़केकी प्यास बुझानेके लिये जलसे भरा यह लोटा लाया हूँ। मेरा वह सम्बन्धी यह शीतल जल पीकर कितनी सुखद शान्तिका अनुभव करेगा ? मेरे प्यारसे उसकी पीड़ा कितनी कम हो जायगी !' वह यही सोच रहा था।

'यदि दुर्भाग्यसे उस लड़केके प्राण निकल गये होंगे, तो विधिका विधान और सैनिकका सामान्य जीवन-क्रम समझकर उसे विधिपूर्वक दफना दूँगा और उसकी आत्माकी शान्तिके लिये परमेश्वरसे प्रार्थना करूँगा।'

उसका मन नये-नये विचारोंसे परिपूर्ण था। उसने आगे सोचा, 'युद्धमें मरनेवाले सैनिकोंको प्रायः घायल अवस्थामें बड़ी प्यास लगा करती है। वे पानीकी एक-एक घूँटके लिये तरसते हैं। बार-बार पानी माँगते हैं। कहीं मेरा पुत्र भी प्याससे न तड़प रहा हो। उसकी तृषा-निवारणके लिये जलसे भरा एक लोटा भी साथ ले चलता हूँ। पहले उसकी प्यास बुझाऊँगा, फिर प्रेमसे उसकी मरहम-पट्टी करूँगा। सान्त्वना और प्रेरणा दूँगा। वह ठीक हो जायगा'''।'

वह अरबी सैनिक पुत्रकी तलाशमें युद्धस्थलमें मुर्दोंको ध्यानसे देखता चल रहा था। ममताका स्नेहपूर्ण बन्धन भी कितना मजबूत है।

उधर युद्धभूमिमें सर्वत्र अगणित सैनिकोंकी क्षत-विक्षत सिसकती या मृत्युकी चिरनिद्रामें निमग्न लाशें बिछी थीं। अनेक सैनिक मर चुके थे, उनके घावोंसे रक्त बह रहा था। मुर्दोंकी दुर्गन्ध फैली हुई थी। फिर भी अरब सैनिक ढूँढ़-भाल करता हुआ किसी प्रकारकी घृणाका अनुभव नहीं कर रहा था। उसे अपने घायल पुत्रको ढूँढ़नेकी एकमात्र बलवती इच्छा थी।

वह फौजी अरब सैनिक उन सिसकती लाशोंमें तेज दृष्टि डालता ढूँढ़ता-ढूँढ़ता आगे बढ़ता जाता था। हाथके

लोटेका जल कई बार छलककर धरतीपर गिर जाता था। वह लोटेको ध्यानपूर्वक सँभालता और सड़ती लाशोंमें फिर लड़केको ढूँढ़ने लगता। फिर सोचता—

'कहाँ है मेरे भाईका पुत्र ! मैं उसकी मरहम-पट्टी करने आया हूँ। प्यासे पुत्रकी तृषा-निवारणके लिये जल-से भरा लोटा लाया हूँ। मेरा प्यारा पुत्र शीतल जल पीकर कितना सुखद शान्तिपूर्ण अनुभव करेगा ! मेरे स्नेहसे उसकी पीड़ा कितनी कम हो जायगी ?

एक स्थानपर वह झुककर एक घायलके चेहरेको ध्यानसे देख रहा था। एकाएक उसके चेहरेपर हर्षकी रेखाएँ खिंच गयीं। एक फीकी-सी मुसकान—संतोषकी भावना दिखायी दी। आशाका दीप जल उठा। उसे लगा कि अन्ततः वह अपने कार्यमें सफल-मनोरथ हो गया था। जिसकी तलाश थी, वह आखिर मिल गया था।

उसे अपने भाईका पुत्र निर्बल घायल रक्त-रंजित और कराहता हुआ मिल गया। ममतासे अभिभूत वह उसके समीप बैठ गया। जलसे भरा लोटा एक ओर रख लिया। युद्धमें लड़केको संगीन चोटें आयी थीं। उसकी बंदूक समीप ही पड़ी थी। उसकी खाकी वर्दीमें लगकर खून जम गया था। ताजे घावोंसे रह-रहकर अब भी खून बह निकलता था। उसकी बड़ी नाजुक हालत थी।

लड़केका कण्ठ उसके अनुमानके अनुसार प्याससे सचमुच सूख रहा था। वह बहुत देरसे 'पानी''पानी''' प्यास लगी है। एक घूँट पानी'''हाय ! पानी''पानी''।' चिल्लाता रहा था।

पर युद्ध-भूमिमें किसे पड़ी थी कि घायल सैनिकको, जिसके मरनेमें अधिक देर नहीं थी, पानी पिलाता। प्याससे उसका गला सूख रहा था। ओठोंपर पपड़ी जम गयी थी।

फौजी अरबने परिस्थितिकी गम्भीरता समझते हुए सावधानीसे लालटेन जमीनपर टिकायी और जलसे भरा लोटा उठाकर घायल लड़केकी प्यास बुझानेका उपक्रम करने लगा। उसने घायल पुत्रको सहारा देकर गोदमें बिठाया। पानीका लोटा उसके ओठोंको लगनेवाला था कि घायलोंमें-से कहींसे एक करुण पुकार उसके कानों तक आयी—

'अरे कोई मुझे पानी दो''पानीके बिना मर रहा हूँ''' प्यास''प्याससे प्राण निकल रहे हैं'''पानी'''की'''एक''' घूँट''पानी दो और मेरे प्राण बचाओ'''।'

उस स्वरमें मार्मिक पीड़ा थी। बेबसी और व्यथा शब्द-शब्दसे प्रकट हो रही थी।

यह क्या ! करुण पुकार सुनकर उस घायल लड़केने जलका लोटा बिना स्पर्श किये ही हटा दिया। लड़खड़ाती जिह्वासे बोला—

'उसे पहले पानी दीजिये'''वह बिना पानी मर जायेगा'''मैं स्वार्थी नहीं बनूँगा'''मैं स्वयं पानी पी लूँ''' और मेरे सामने मेरा दूसरा सैनिक प्याससे मर जाय''' नहीं, नहीं'''यह तो खुदगर्जी होगी'''हैवानियत होगी। '''इन्सानियतका तकाजा है कि पहले मुझसे अधिक जरूरतमन्दकी मदद हो'''आप पहले मुझे नहीं, उसे जल पिलाइये'''बचा तो मैं पानी बादमें पी लूँगा''''''।'

फौजी अरब यह शब्द सुनकर चकित हो गया''' अस्पष्ट-से शब्द अबतक उसके कानोंमें आ रहे थे'''

'उसकी जरूरत मेरी जरूरतसे ज्यादा बड़ी है'''आदमीका जन्म मानवताकी सेवाके लिये हुआ है''' इन्सानियतकी रक्षासे बड़ा सुख दूसरा नहीं है'''उसे पानी पिलाइये''' मैं बादमें पीऊँगा'''।'

फौजी अरबने जलपात्र नीचे रख दिया। अपनी गोदीसे लड़केका सिर फिर सख्त धरतीपर रख दिया। उस करुण स्वरको लक्ष्य कर वह इस नये घायल सैनिककी ओर बढ़ा—ढूँढ़ता-ढूँढ़ता वह सैनिकके समीप पहुँचा। उसने देखा एक अधेड़ घायल सरदार, फौजी अफसर, प्याससे मर रहा था। जलके अभावमें वह बुरी तरह तड़प रहा था। अधेड़ अफसरकी असह्य वेदना उससे देखी न गयी। उसे ऐसा लगा कि यदि फौरन पानी न पिलाया गया, तो दो-चार मिनिटमें ही शायद वह मौतकी चिर-निद्रामें निमग्न हो जायेगा।

अरब सैनिकने दया, करुणा और ममतासे अभिभूत जलका लोटा उस सरदारकी ओर बढ़ा दिया, बोला—

'लीजिये, सरदार साहब ! आपके लिये पानी हाजिर है। आपका तालु प्याससे सूखा जा रहा है। शब्द मुँहसे नहीं निकल रहे हैं। आपकी कमजोरी बढ़ती जा रही है। अपनी प्यास बुझा लीजिये'''ईश्वरने मुझे आपके पास पानी देकर भेजा है'''पानी लीजिये'''।'

अधेड़ सरदारने पानी देखा और सुखकी श्वास ली।

अहह ! आखिर उसे पानी मिल गया था। लाशोंसे पटी श्मशान-जैसी युद्धस्थलीमें रातके समय भी भगवान्ने उसे पानी भेज दिया था । ईश्वरकी लीला कैसी विचित्र है। वह मन-ही-मन भगवान्की असीम कृपा और दैवी सहायताको धन्यवाद अर्पित कर रहा था ।

अरब सैनिकने पानीका लोटा घायल सरदारकी ओर बढ़ा दिया । सहारा देकर बैठाया। प्यासे ओठ शीतल जलकी ओर बड़ी उत्सुकतासे बढ़े । कितनी प्रतीक्षाके बाद यह पानी उसे मिला था ।

लेकिन इससे पहले कि वह एक घूँट जल पिये, घायलोंमें-से फिर एक करुण पुकार सुन पड़ी—

'पानी···एक घूँट पानी इस प्यासे सिपाहीको दो। ओह ! मैं प्याससे मर रहा हूँ···क्या कोई पानी नहीं देगा ! पानी···पानी···बिना पानी मेरे प्राण निकल रहे हैं···कोई दया करो···बस एक घूँट पानी पिला दो·····।'

घायल सैनिक सरदारके मनमें अचानक मानवताकी करुणा और दया जाग्रत् हो उठी । उसने सोचा, 'इन्सानियतका तकाजा है कि पहले अपनेसे ज्यादा जरूरतमन्दका ध्यान रक्खा जाय, अपना स्वार्थ बादमें रहना चाहिये। मरते दमतक यदि इस शरीरसे परोपकार हो जाय, तो जीवन धन्य है । त्यागसे ही मानव-जीवनका पुण्यफल प्राप्त होता है।'

घायल सैनिक सरदारने उस करुण ध्वनिकी ओर संकेत करते हुए आदेश दिया, 'मेहरबानी कर मुझे छोड़ यह जलका लोटा उस घायल सिपाहीके पास ले जाइये । उसकी जरूरत मेरी जरूरतसे ज्यादा महत्त्वकी है। पहिले वह सैनिक पानी पीयेगा। मेरा नंबर तो बादमें ही आ सकता है···उधर पानी ले जाइये···जल्दी कीजिये··· वह प्यासकी वजहसे दम तोड़ रहा—मालूम होता है।'

विवश हो फौजी अरब सैनिक जलका लोटा लिये तीसरे घायल सिपाहीकी कातर ध्वनिकी ओर बढ़ा ।

उसने दुःखभरे नेत्रोंसे देखा कि एक अति दुर्बल सैनिक, जो बहुत ही बुरी तरह घायल है, लाशोंके मध्य घोर पीड़ासे कातर है । क्रूर मृत्युके राक्षसी जबड़े उसके सिरपर हर क्षण उसे निगलनेको तैयार खड़े हैं ।

वह बोला, 'लीजिये···पानी हाजिर है···जल पीकर स्वस्थ हूजिये··· प्यासके कारण आपमें निर्बलता बहुत बढ़ गयी है···बोल भी नहीं निकल रहा है···जल परमात्माकी अमृतोपम ओषधि है। जल पीजिये···यह लोटा ओठोंतक लगाइये।'

उसने ज्यों ही उस निर्बल घायल सैनिकको पानी पिलानेका प्रयत्न किया कि उसकी गोदमें ही उसके प्राण-पखेरू उड़ गये ! हाय ! वह जलकी एक घूँट भी तालुके नीचे न उतार सका या कहीं दो-चार बूँदें उतरी होंगी । लोटेमें पानी भरा-का-भरा ही रह गया ! मनुष्यका जीवन कितना क्षणभंगुर है ! एक क्षणका पता नहीं ! परोपकारका एक स्वर्णिम अवसर उसके हाथसे निकल गया था। अब क्या करें !

उस अरब सैनिकके मनमें आया, 'यह बेचारा तो बिना पानी ही चल बसा, अब उस घायल सरदार सैनिकको ही यह जल पिलाकर परोपकार करना न्यायसंगत है···, किसीका हित होना चाहिये।'

वह उलटे पाँव लौट पड़ा, जलपात्र लिये !

सरदारके पास पहुँचा । वह प्यासके कारण जलसे निकली मछलीकी तरह तड़प रहा था। उसके ओठोंमें रक्त शेष न रहा था। चेहरा एकदम काला-सा पड़ गया था। उसने जल्दी-जल्दी उसका सिर उठाया और जलपात्र ओठोंसे छुआया—

उफ ! यह क्या ! उसका सिर तो एक ओर गिर गया— उसने दुःखपूर्ण नेत्रोंसे देखा कि अत्यधिक पीड़ाके कारण एकाएक उसकी गोदमें ही अधेड़ सरदारके हृदयकी गति थम चुकी थी···वह भी मौतकी गोदमें सो गया था।

एक और आघात उसके हृदयपर लगा ! परोपकारके दो अवसर देखते-देखते उसके हाथोंसे निकल गये थे।

ओफ़ ! मृत्यु भी कैसी क्रूर है ! एक पल भी न रुकी !

अब वह फिर सोच रहा था। क्या करे ?

तब उसे फिर अपने चचेरे भाईके पुत्रकी स्मृति आयी। दूसरोंका कुछ भला न हो सका, तो अपने सम्बन्धीका ही हित किया जाय ।

वह घायल पुत्रकी ओर जलपात्र लिये दौड़ा···दो मृत्युएँ उसके हाथोंमें हो चुकी थीं। वह लंबे पगोंसे उसके समीप पहुँचा···

उफ़ ! पुत्रके पास पहुँचा, वहाँ उसने जो देखा, उससे और भी तीव्र मानसिक आघात लगा।

ठीक समयपर जल न मिलनेके कारण वह भी अन्तिम श्वास ले चुका था । वह पछता रहा था कि यह भी अवसर उसके हाथोंसे निकल गया था ।

पानीका लोटा उसके हाथमें था, पर एक दूसरेके लिये त्याग करने, अपने स्वार्थकी अपेक्षा दूसरेका पहले ध्यान रखनेके कारण तीन लाशें उसके सामनेसे गुजर चुकी थीं ।

विधिका क्रूर विधान ! तीनों घायल सैनिकोंने अपनेसे अधिक जरूरतमन्दके लिये त्याग किया ... पर जल किसीको भी न मिल पाया ।

उपासनाकी महत्ता

(रचयिता—श्रीरामनारायणजी त्रिपाठी 'मित्र' शास्त्री, नव्य व्याकरणाचार्य)

मित्रो ! निज हृदयोंमें संतत, रक्खो यह विश्वास अचल ।
उपासनासे मानव जीवन, बन जाता है सरल सफल ॥

(१)

भाव अनन्य उपास्य ब्रह्ममें, श्रद्धासे जब उमता है ।
उसके पूत पदोंमें रत हो, अविरत जब मन रमता है ॥
लौकिक सकल कष्ट सहनेकी, आ जाती जब क्षमता है ।
धन वैभव परिवार गेहकी, मिट जाती जब ममता है ॥
तब सब भाँति उपासक जनका, खिल जाता है हृदयकमल ।
उपासनासे मानव जीवन, बन जाता है सरल सफल ॥

(२)

उच्च नीचमें भेद न कुछ भी, फिर उसको दिखलाता है ।
श्वपच श्वान द्विज धेनु सभीको, वह मनसे अपनाता है ॥
घृणा तथा अभिमान त्याग कर, जोड़ स्नेहका नाता है ।
नव आदर्श दिखाकर जगको, शुचि समता सिखलाता है ॥
दुखियोंका दुख देख दृगोंमें, भर आता है उसके जल ।
उपासनासे मानव जीवन, बन जाता है सरल सफल ॥

(३)

आदर दे उसके चरणोंमें, अखिल विश्व झुक जाता है ।
उसके तेज-पुञ्जमें पड़कर, पाप-पुंज फुँक जाता है ॥
हिंसक उसकी सन्निधिमें आ, तुरत मित्र बन जाता है ।
विद्रोही-दल उसे देखकर, विपिनोंमें लुक जाता है ॥
उसके उरमें अमित अलौकिक, बढ़ जाता है आत्मिक बल ।
उपासनासे मानव जीवन, बन जाता है सरल सफल ॥

(४)

निन्दा तथा प्रशंसापर वह, कुछ भी ध्यान न लाता है ।
निर्विकार ईश्वरको भज वह, निर्विकार बन जाता है ॥
सभी दशाओंमें सहर्ष वह, निज कर्तव्य निभाता है ।
परमानन्द सुलभ कर सुखसे, वह शुभ समय बिताता है ॥
निज आराध्य परेश्वरको वह, नहीं भुलाता है प्रतिपल ।
उपासनासे मानव जीवन, बन जाता है सरल सफल ॥

(५)

ईर्ष्या द्वेष असूयाको वह, दूर हृदयसे करता है ।
सतत सत्त्वगुण सञ्चित कर वह, मन मन्दिरमें भरता है ॥
पड़कर लोभ मोह तममें, वह पद न कुपथपर धरता है ।
रत रहता है शुभ कर्मोंमें, दुष्कर्मोंसे डरता है ॥
आडम्बर रच किसी व्यक्तिसे, कभी न करता है वह छल ।
उपासनासे मानव जीवन, बन जाता है सरल सफल ॥

(६)

उसकी उज्ज्वल कीर्तिकौमुदी, भुवनोंमें छा जाती है ।
जिसका महाप्रकाश प्राप्त कर, सृष्टि सुपथ पा जाती है ॥
अमर लोकमें अमर मण्डली, उसके गुण-गण गाती है ।
उसको 'मित्र' बना हृदयोंमें, सरस शान्ति आ जाती है ॥
अन्त समयमें वही उपासक, पा जाता है मुक्ति विमल ।
उपासनासे मानव जीवन, बन जाता है सरल सफल ॥

सत्सङ्ग एक मानसरोवर है

(लेखक —श्रीमान् आचार्य स्वामीजी श्रीगोविन्दप्रकाशजी महाराज)

'बड़े भाग मानुष तनु पावा ।' परंतु किस लिये, यह एक विचारणीय प्रश्न है। इस प्रश्नके हलमें ही जीवनका विकास निहित है। जीवन खोनेके लिये है या पानेके लिये ? जो इस प्रश्नका उत्तर पा लेते हैं, निश्चय ही उनका मानुष-तन पाना सार्थक हो जाता है।

सभी योनियोंमें मनुष्य-योनि सर्वश्रेष्ठ कही गयी है। मनुष्य-योनिके श्रेष्ठ होनेका कारण यह है कि परमात्माने उसे 'विवेक' नामकी एक ऐसी शक्ति दे रक्खी है, जो सत्-असत्का भेद बता सकनेमें समर्थ है। यह विवेक-रूपी शक्ति समस्त प्राणियोंमें केवल मनुष्यके पास ही है। यही शक्ति जागरित होकर जीवनका सर्वश्रेष्ठ फल प्राप्त करा सकती है और यदि सोयी हो तो जीवनको नरक बना डालती है। अब प्रश्न यह है कि जिस मनुष्य-योनिको प्राप्त करनेके लिये देवता तक लालायित रहते हैं, उसे पाकर क्या केवल भोगोंमें ही खो देना है ? याद रक्खो, मनुष्ययोनि मिली है शुभ कर्मोंके द्वारा जीवनका उच्चतम विकास करनेके लिये। जीवनका उच्चतम विकास परमात्माकी प्राप्तिमें ही निहित है।

किंतु प्रश्न यह है कि प्राणी इस विकासकी ओर उन्मुख कैसे हो ? आज चारों ओर जो जीवन दिखायी पड़ रहा है, उसकी दिशा विकासकी ओर नहीं, विनाशकी ओर है। विनाशको ही बुद्धिभ्रमसे विकास कहा जा रहा है। आज जीवनमें घोर अशान्ति, दुःख, अभाव और संघर्ष हैं। आज प्राणी इन्हींको जीवन मानते हुए जीवनकी गाड़ी घसीट रहा है। सफल-जीवनका अर्थ है कि वह अभाव, अशान्ति और संघर्षसे मुक्त हो। इसीलिये ईश्वरने मनुष्यको विवेक-शक्ति दी है कि वह सत्-असत्का निर्णय कर 'सत्'का ग्रहण और असत्का त्याग कर सके। किंतु आज विवेकके अभावमें 'सत्'के त्याग और 'असत्'के ग्रहणकी बात ही देखनेमें आती है। वस्तुतः विवेकका अभाव नहीं हो सकता। वह रहता तो प्रत्येक व्यक्तिमें है किंतु व्यक्ति उसकी अवहेलना करके उसे दबा देता है। फल यह होता है कि असत् या दोष उसके जीवनसे छूट नहीं पाते और असत्से सम्बन्धके कारण ही अशान्ति, अभाव और दुःख उसे भोगने पड़ते हैं।

इसलिये प्राप्त विवेकका समुचित आदर करना ही भगवत्-प्राप्तिके लिये सबसे बड़ी साधना है। विवेकपूर्ण जीवनमें ही भगवत्-प्राप्ति हो सकती है और इस विवेकको जागरित करनेका काम 'सत्सङ्ग'का है।

बिनु सतसंग बिबेक न होई ।

समस्त शास्त्रों, पुराणों और संत महापुरुषोंने एक स्वरसे सत्सङ्गकी महिमा गायी है। सत्सङ्ग ही वह परम-शक्ति है, जो मनुष्यके विवेकको जागरित कर सत् परमात्मासे उसका सम्बन्ध जोड़ती है। सत्सङ्गका अर्थ सत्यको प्राप्त संतोंका सङ्ग, सत्का चिन्तन और सत्यका अनुसंधान है। सत्सङ्ग एक सागरके समान है, जिसमें पड़ी हुई जीवन-नैया यदि मल्लाहद्वारा विवेक और धैर्यके पतवारोंसे चलायी जाती है, तो आनेवाली कठिनाइयोंके तूफान उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते। जीवनमें सुख-दुःखके भयंकर तूफान आते रहते हैं, जिनमें फँसकर साधारण प्राणी अपना विनाश कर डालता है, किंतु जिसने सत्सङ्गका आश्रय ले रक्खा है, वह विवेक और धैर्यके बलसे अपनेको विनाशसे बचानेमें सफल हो जाता है।

भाग्योदयेन बहुजन्मसमार्जितेन
सत्सङ्गमेव लभते पुरुषो यदा वै।

निस्संदेह बड़े भाग्यवाला पुरुष ही सत्सङ्ग प्राप्त कर पाता है। सत्सङ्गका वास्तविक लाभ तो उन्हें ही हो पाता है, जिनके अंदर सच्ची जिज्ञासा और लगन होती है। सत्सङ्ग एक मानसरोवरके समान है। जिस प्रकार मानसरोवरमें हंस, बगुले और बत्तखें रहती हैं, उसी प्रकार यही तीनों प्रकारके मनुष्य सत्सङ्गमें आते हैं। पहली श्रेणीमें वे हैं जो हंसके रूपमें आते हैं। सत्सङ्गका सच्चा लाभ भी उन्हें ही होता है। जिस प्रकार सीपीमेंसे निकलनेवाले मोतीको चुगकर हंस नीर-क्षीर-विवेकको प्राप्त करता है, उसी प्रकार वे भी महात्मारूपी सीपीसे उपदेशरूपी मोती चुगकर सत्-असत्का विवेक प्राप्त करते हैं और विकासकी ओर बढ़ जाते हैं। कुछ ऐसे भी होते हैं जो केवल बगुलेकी तरह मछली खाते हैं अर्थात् वे सत्सङ्गसे कुछ प्राप्त तो करते नहीं, उलटे बहसमें अपना समय नष्ट करके अपनी बुद्धि कुण्ठित कर लेते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी लोग हैं जो बत्तखोंकी तरह आते हैं अर्थात् जैसे बत्तखें मानसरोवरमें केवल पानी पीने आती हैं वैसे ही वे भी सत्सङ्गमें केवल हाजिरी देने ही आते हैं।

सब देशोंमें अपने-अपने सिक्के चलते हैं और उन देशोंके सिक्के लेकर ही हम वहाँ जा सकते हैं और यदि किसीके पास किसी देशके सिक्के न हों तो वह वहाँ नहीं जा सकता। किंतु यदि सोना पासमें हो तो किसी भी देशमें हम जा सकते हैं, चाहे वहाँके सिक्के हमारे पास हों या न हों। ठीक इसी प्रकार श्रेष्ठ कर्मोंवाला व्यक्ति पितृलोकमें, भक्ति-प्रधान व्यक्ति गोलोकमें जाता और अपरोक्ष ज्ञानवाला ब्रह्मको प्राप्त होता है, किंतु जिसके पास सत्सङ्गरूपी सोना होता है वह जिस लोकमें भी चाहे, जा सकता है। सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सारूप्य और एकत्व पाँचों मुक्तियाँ सत्सङ्गसे ही सुलभ हैं।

सत्सङ्गकी जितनी भी महिमा गायी जाय, थोड़ी है। सत्सङ्ग ही परमार्थका द्वार है। सत्सङ्गसे ही नीची वृत्तियाँ समाप्त होती हैं और अन्तःकरण पवित्र होता है। सत्सङ्ग ही भगवत्-प्राप्तिके लिये सर्वसुलभ और सबसे सरल साधन है। जो स्थिति अत्यन्त दुर्लभ साधनोंसे भी अप्राप्य है, वही सत्सङ्गके द्वारा सहज ही प्राप्त होती है। जिस प्रकार किसी प्रदर्शनीमें बहुत-सी वस्तुएँ रक्खी हों किंतु बिना मूल्यके आप उन्हें प्राप्त नहीं कर सकते, इसी प्रकार सारा सत्य और ब्रह्मज्ञान शास्त्रोंमें भरा पड़ा है किंतु वह बिना सत्सङ्गके उपलब्ध नहीं हो सकता। सत्सङ्गके प्रभावसे ही अनेक जटिल-से-जटिल हृदय-परिवर्तनोंके उदाहरण इतिहासमें भरे पड़े हैं। सत्सङ्गका ही प्रभाव था, जिसने वाल्मीकि-जैसे डाकूको ब्रह्मज्ञानी बना दिया।

इस तरह सारी साधनाका मूल सत्सङ्ग है, जो सभी प्रकारकी सिद्धियों और फलोंको देनेवाला है।

सतसंगति मुद मंगलमूला।
सोइ फल सिधि सब साधन फूला॥

सत्सङ्गकी महिमा

कल्पद्रुमः कल्पितमेव सूते सा कामधुक्कामितमेव दोग्धि।
चिन्तामणिश्चिन्तितमेव दत्ते सतां हि सङ्गः सकलं प्रसूते॥

कल्पवृक्ष केवल कल्पित वस्तुएँ ही देता है, कामधेनु केवल इच्छित भोग ही प्रदान करती है तथा चिन्तामणि भी चिन्तित पदार्थ ही देती है; किंतु सत्पुरुषोंका सङ्ग सभी कुछ देता है।

दक्षिण-पूर्व एशियामें राम (राष्ट्रीय एकताके प्रतीक)

(लेखक—श्रीलल्लनप्रसादजी व्यास)

मैंने दक्षिण-पूर्व एशियाकी अपनी विभिन्न यात्राओंमें यह अनुभव किया कि इन देशोंमें बुद्धदेवके अतिरिक्त यदि कोई भारतीय देवता या महापुरुष सबसे अधिक लोकप्रिय हैं तो वे श्रीराम। आश्चर्यकी बात तो यह है कि जो देश बौद्धधर्मावलम्बी नहीं हैं, उनमें भी मर्यादा-पुरुषोत्तम राम और रामायण उतने ही प्रचलित हैं जितने कि किसी बौद्ध देश या भारतमें। भारतकी तरह कतिपय इन देशोंमें भी राम उनके बिल्कुल अपने हैं, जैसे भारतमें भारतवासियोंके।

थाईलैंड यद्यपि बौद्ध देश है किंतु साथ ही रामका भक्त भी। थाईवासियोंके रामायण-ज्ञानका अनुमान आप इसीसे लगा सकते हैं कि एक बार एक व्यक्तिने एक छोटे-से बालकसे प्रश्न किया कि 'जब सीता इतने समयतक रावणकी लंकामें रही तो वह चाहते हुए भी उन्हें अपनी पत्नी क्यों नहीं बना सका?' तो उसने उत्तर दिया कि 'सीताके शरीरसे एक ऐसी अग्नि-ज्वाला निकलती थी, जिससे कि अगर रामके अतिरिक्त उन्हें कोई छूता तो वह जल जाता।' एक साधारण बालकका यह रामायण-ज्ञान यह सिद्ध करता है कि थाई-जीवनमें राम और रामायणकी लोकप्रियताकी जड़ें कितनी गहरी हैं।

थाई रामायणका नाम है रामकियेन—अर्थात् रामकीर्ति। यहाँकी रामायणका कथानक मूलतः वाल्मीकीय रामायणसे ही लिया गया है और समय-समयपर अनेक रामायण यहाँ लिखी भी जा चुकी हैं। किंतु सबसे अधिक प्रामाणिक और लोकप्रिय रामायण सन् १८०७ में नरेश राम प्रथमने लिखी। इसी नरेशकी वंश-परम्परा आज भी थाईलैंडमें चली आ रही है और आजके नरेश भूमिवल अतुलतेज भी अपने नामके साथ राम लगाते हैं। थाई-रामायणके कथानकका मूल भारतीय होनेके बावजूद इसे अपने देशके गुण और विशेषताओंसे युक्त बना लिया गया है—ऐसा कि प्रत्येक थाईवासी यही समझता है कि राम उनके देशमें ही हुए और रामायणकी घटनाएँ उनके ही देशमें ही घटित हुईं।

और प्रमाण भी ले लीजिये। थाईलैंडमें अयोध्या नामक नगरी भी है। अयोध्या ही नहीं, लोपबुरी (लवपुरी) भी है। बैंकाकके एक प्रसिद्ध मन्दिरकी दीवालोंमें रामकियेनकी घटनाएँ चित्रित हैं। यहाँके राष्ट्रीय संग्रहालयमें रामकी अनेक मूर्तियाँ देखी जा सकती हैं। भवनके बाहर भी रामकी मूर्ति है।

थाईलैंडका पड़ोसी देश है कम्बोडिया—जिसके प्रसिद्ध अंगकोर मन्दिरोंकी दीवालोंके पत्थरोंपर रामायणके दृश्य उत्कीर्ण हैं। इसी प्रकार लाओसके कुछ मन्दिरोंमें भी रामकथाके दृश्य उत्कीर्ण हैं। इन देशोंमें रामसे सम्बन्धित नृत्य नाटक राजमहलोंसे लेकर साधारण स्थलोंपर भी खेले जाते हैं।

यह बात तो हुई बौद्ध देशोंकी। साथ ही मलेशिया और इंडोनेशिया जैसे इस्लाम धर्मावलम्बी देश भी रामभक्तिमें किसीसे पीछे नहीं। मलय रामायणका नाम है 'हिकायत सिरीरामा।' मलय देशमें रामकी लोकप्रियताका पता इसीसे लगाया जा सकता है कि यहाँ सड़कोंके किनारे रोचक कार्य-क्रम आयोजित करनेवाले रामायणकी घटनाओंका अभिनय करते हैं, तत्सम्बन्धी गाने गाते हैं और चर्मपटोंके माध्यमसे रामायणके पात्र बनाकर उनका अभिनय कराते हैं। यह अभिनय-कला यहाँ बहुत विकसित है और जनसाधारण इसमें बहुत रुचि लेता है। मलेशियामें लक्ष्मण नौसेनाके एडमिरलको कहते हैं जो शूर-वीरताका द्योतक है।

इंडोनेशिया तो दक्षिण-पूर्व एशियामें राम और राम-कथाका सबसे बड़ा प्रेमी है। इंडोनेशियामें रामकथाके

प्रति प्रेम देखकर यह निर्णय कर पाना कठिन हो जाता है कि राम और रामायणके प्रति निष्ठा भारतमें अधिक है या इंडोनेशियामें। अन्तर सिर्फ इतना है कि भारत रामको भगवान्के रूपमें देखता है और इंडोनेशिया एक महापुरुषके रूपमें। यहाँकी रामायणका नाम है 'रामायण काकविन', जो सम्भवतः नवीं शताब्दीमें लिखी गयी थी। रामकथाका प्रचार बाली और जावा द्वीपोंमें विशेषरूपसे है। बाली तो हिंदू द्वीप है और वह पूर्णतः रामकथासे आप्लावित है; किंतु मुस्लिम-बहुल जावाके जोगजाकर्तामें रामसम्बन्धी नृत्य-नाटक विश्वभरमें प्रसिद्ध है। जोगजाकर्ताके निकट ही स्थित परमबननके मन्दिरकी प्रस्तर-भित्तियोंपर सम्पूर्ण रामायण उत्कीर्ण है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इन देशोंमें राम सर्वत्र पूज्य और वन्दनीय हैं। धर्म, जाति, भाषा और वर्ग—उनकी श्रेष्ठताके मार्गमें नहीं आते। सभी उन्हें अपना महापुरुष या राष्ट्रीय पुरुष मानते हैं और उनसे सम्बन्धित नाट्य-नृत्य या अन्य लीला देखकर पुलकित होते हैं और राम-साहित्य पढ़ और सुनकर आनन्दित होते हैं। सत्प्रेरणा प्राप्त करते हैं। चाहे बौद्धदेश थाईलैंडका बौद्ध हो, चाहे मलय देश और जावा द्वीपका मुसल्मान हो और चाहे बालीद्वीपका हिंदू हो—सभीके लिये राम समानरूपसे महान् और श्रेष्ठ हैं। मैंने देखा इंडोनेशियाके जावा द्वीपमें यत्र-तत्र रामलीला होते हुए, जिसमें मुस्लिम अभिनेतागण बड़ी निष्ठा और कुशलतासे राम, लक्ष्मण, हनुमान् आदिका अभिनय कर रहे थे और हजारोंकी संख्यामें वहाँके एकमात्र मुस्लिम-निवासी बड़ी तन्मयतासे उसे देख रहे थे। वे रामलीला और राम-सम्बन्धी नृत्य-नाटकोंको अपने देशकी कला मानते हैं और राम-सम्बन्धी मूर्ति और मन्दिरोंको अपने देशकी सांस्कृतिक धरोहर मानते हैं, जिसे बड़े गौरवके साथ वे दूसरोंको दिखाते हैं कि यह सांस्कृतिक धरोहर हमारी अपनी है।

अब प्रश्न उठता है कि जब राम-सम्बन्धी साहित्य और सांस्कृतिक अवशेष इन देशोंमें सभीके द्वारा वन्दनीय हैं और राम इन देशोंमें राष्ट्रीय एकताके प्रतीक हैं, तो भारतमें ऐसा क्यों नहीं ? भारतमें राम राष्ट्रीय एकताके प्रतीक क्यों नहीं और उनसे सम्बन्धित सांस्कृतिक धरोहर सभी निवासियोंकी अपनी क्यों नहीं ? बल्कि कुछ राज्योंमें प्रचलित पाठ्य-पुस्तकोंमें समाविष्ट राम और कृष्ण-सम्बन्धी पाठोंको निकालनेकी माँग क्यों की जाती है ?

इसीलिये सत्य तो यह है कि जबतक इस देशमें सभी निवासी—चाहे वे जिस धर्म, जाति और वर्गके हों, इस देशकी मूल सांस्कृतिक धरोहरको अपनी नहीं मानते, तबतक यहाँ सच्ची राष्ट्रीय एकता सम्भव नहीं हो सकती। राष्ट्रीय एकताका यही ठोस आधार है। वास्तविक और दिखावेकी बातोंसे सच्ची राष्ट्रीय एकता सम्भव नहीं होती और सदैव अलगावकी प्रवृत्ति बनी रहती है जिसका दुष्प्रभाव एक बार यह राष्ट्र-विभाजनके रूपमें भुगत चुका है। इस सत्यका साक्षात्कार जितनी शीघ्रतासे भारतीय जनमानस—विशेषकर देशके कर्णधारोंको हो सके, उतना ही राष्ट्रके लिये श्रेयस्कर होगा। जबतक ऐसा नहीं होता, यही माना जायगा कि हमने देशके दुर्भाग्यपूर्ण विभाजनके बाद भी उससे कोई सबक नहीं सीखा और राजनीतिक स्वार्थ राष्ट्रहितपर हावी रहें।

दक्षिण-पूर्व एशिया—विशेषकर इंडोनेशिया-जैसे देशोंकी विभिन्न यात्राओंमें रामके सर्वमान्य महत्त्वको देखकर मेरे मनमें सदैव यही एक भावना उठती रही, काश, हमारे देशमें भी ऐसा होता। जब ऐसा होगा तब भारतके लिये कितना शुभ दिन होगा। वही दिन राजनीतिक विद्वेष और स्वार्थपरतापर सांस्कृतिक एकता और सद्भावनाका विजय-दिवस होगा। भारतकी सच्ची विजयदशमी तो तभी होगी।

उस विचित्र घटनाके सूत्रधार वे चारों कौन थे ?

(लेखक—प्रो० श्रीजगद्बहादुरसिंहजी एम्० ए०, एल्० टी० अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग, शासकीय महाविद्यालय, छिन्दवाड़ा (म० प्र०)

आत्मा और परमात्माकी भाँति ही भूतों और प्रेतोंके अस्तित्वके विषयमें प्राचीन कालसे खण्डन-मण्डनात्मक विवाद चला आ रहा है । यद्यपि प्रेतयोनिके सम्बन्धमें अभी निर्णयात्मक रूपसे कुछ भी कहना कठिन है; किंतु यह सत्य है कि प्रागैतिहासिक कालसे ही संसारके प्रायः सभी देशोंमें प्रेतयोनिसम्बन्धी विश्वासकी सजीव परम्परा किसी-न-किसी रूपमें आजतक चली आ रही है। विश्व साहित्यमें प्राचीनतम माने जानेवाले वैदिक ग्रन्थोंमें जहाँ एक ओर देवताओंके वैविध्यपूर्ण व्यक्तित्व एवं चरितावलीकी प्रशंसात्मक स्तुतियाँ संकलित हैं, वहीं दूसरी ओर जादू, टोना, प्रेतापसारण आदि विषयोंसे सम्बन्धित मन्त्रोंका भी संनिवेश है । आजके विज्ञानप्रधान युगमें प्रगतिशील कहलानेवाला मनुष्य भूत-प्रेत-विषयक मान्यताओंको आदिम तथा अविकसित सभ्यताका अन्धविश्वास एवं प्रेत-कथाओंको कोरी गप्पके अतिरिक्त और कुछ माननेको तैयार नहीं । इन कथाओंकी सत्यताका सम्यक् परीक्षण किये बिना उनपर अविश्वास व्यक्त करनेका फैशन-सा हो गया है । भूत-प्रेतोंके विषयमें मेरा भी मन सदा शङ्कालु रहा है तथा प्रेतसम्बन्धी चर्चाएँ मेरे लिये काल्पनिक, भ्रामक तथा अविश्वसनीय रही हैं । किंतु मेरे समक्ष घटित एक रोमहर्षक घटनाने मेरी इस धारणाको बुरी तरहसे झकझोर दिया है और उस दिनसे प्रेतसत्ताका तर्कपुरस्सर खण्डन करनेका मुझमें साहस नहीं रह गया है ।

बात जून १९६३ की है । उन दिनोंमें शासकीय महाकोशल महाविद्यालय, जबलपुरमें प्राध्यापक था । मई-जून मासका ग्रीष्मावकाश व्यतीत करने मैं अपने गाँव (बारा, उन्नाव, उ० प्र०) गया था । मेरे वहाँ पहुँचनेके दिन ही मेरे आत्मीयजनों एवं मित्रोंने अन्यान्य समाचारोंसे अवगत करानेके साथ ही एक विस्मयजनक घटनाका समाचार सुनाया । उन्होंने बतलाया कि गाँवके एक कुम्हारके १५-१६ वर्षीय लड़केके आस-पास ईंटें, पत्थर, कुल्हड़ तथा मिट्टीके बर्तनोंके टुकड़े बरसा करते हैं, किंतु फेंकनेवाला दृष्टिगोचर नहीं होता । कई वयोवृद्ध सज्जनोंने भी उक्त सूचनाकी पुष्टि की । अतः कुतूहलवश मैं दूसरे ही दिन उस कुम्हारके यहाँ गया । मेरे द्वारा पूछे जानेपर कुम्हारके लड़केने बतलाया कि मुझे नाटे कदके काले-कुरूप छः मानवाकार प्राणी दिखलायी पड़ते हैं । वे प्रायः अपने हाथोंमें हँसिया लिये रहते हैं तथा मुझे मारनेके लिये संकेतोंसे धमकाया करते हैं । उसके अभिभावकोंने यह भी बतलाया कि रातमें सोते समय उसे कोई थप्पड़ मारकर जगा देता है या गर्दन मरोड़ने लगता है अथवा चारपाईसे नीचे पटक देता है । उपद्रव बीच-बीचमें कुछ दिनोंके लिये अपने-आप शान्त भी हो जाया करता था । घटनास्थल मेरेद्वारा निरीक्षणके समय भी शान्त था; अतः वहाँसे मैं यह कहकर लौट आया कि उपद्रवकी पुनरावृत्ति होनेपर मुझे उसकी सूचना देना ।

दैवयोगसे उस कुम्हारके यहाँ उक्त उपद्रवकी पुनरावृत्ति तो नहीं हुई, किंतु २१ जून, १९६३ को उससे भी अधिक आश्चर्यजनक घटना घटित हुई । गाँवमें श्रीयदुनाथ मिश्र नामक एक प्रतिष्ठित व्यक्ति रहते हैं, जो जग्गू पण्डितके नामसे विख्यात हैं । उन दिनों मिश्रजीके दो बड़े पुत्र नौकरीमें होनेके कारण घरसे दूर थे तथा मिश्रजीकी पत्नी अपने पीहरमें । घरमें थे मिश्रजी, उनका लगभग सात वर्षीय पुत्र, दस वर्षीया पुत्री तथा लगभग अट्ठारह वर्षीया पुत्रवधू । मध्याह्नका समय था । मिश्रजी गेहूँ पिसाने चक्की गये थे । उनके पुत्र तथा पुत्री—दोनों मुख्यद्वारसे संलग्न एक कमरेमें खेल रहे थे । पुत्रवधू रसोईके कार्यसे मुक्त हो घरके बाहर टट्टीके लिये चली गयी । जाते समय उसने मुख्यद्वारके किवाड़ बंद करके जंजीर लगा दी थी । किंतु उसने वापिस आकर देखा कि किवाड़ खुले हुए हैं । उसने समझा कि मिश्रजी गेहूँ पिसाकर आ गये हैं; किंतु ज्यों ही वह और निकट आयी कि उसके पैरोंके नीचेकी जमीन खिसक गयी । उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि दहलीज-में रक्खी हुई मिश्रजीकी साइकिलकी गद्दीपर एक हाथ रक्खे हुए गठीले शरीर और काले रंगका, भयावनी आकृतिवाला एक युवक खड़ा है । उसे चोर समझकर युवतीने ललकारा—'अंदर यह कौन खड़ा है ? दौड़ो-दौड़ो चोर !' इतना सुनते ही वह व्यक्ति निकलकर भाग गया । युवती घरके अंदर गयी और अंदरसे किवाड़ बंद करके

पण्डितजीकी गर्जना समाप्त भी न हो पायी थी कि एक ईंट आकर युवतीके ललाटपर लगी । आहत स्थानपर नीलिमा दौड़ गयी और एक गुल्म उभर आया । यह देखकर उपस्थित लोगोंने पण्डितजीको शान्त रहनेकी सलाह दी ।

इस घटनाके उपरान्त युवतीको घर लाया गया । ईंटें गिरती रहीं । मिश्रजी तथा उनके परिवारके सदस्योंने तीन दिनोंसे अन्नका दर्शन तक न किया था और न शयन ही किया था । जयराजमऊवाले पण्डितजी भी कोई चमत्कार न दिखा सके । प्रेतापसारणके सभी उपाय असफल सिद्ध हुए । इसी बीच एक विचित्र घटना घटी । पता नहीं, किस दैवी प्रेरणासे मिश्रजीको एक उपाय सूझा । वे अपनी प्रेताविष्ट पुत्र-वधूके पास जाकर बद्धाञ्जलि बैठ गये और उससे अत्यन्त निराश, कातर एवं दैन्यपूर्ण स्वरोंमें बोले—'महाराज ! मेरी बहुत परीक्षा हो चुकी है । मैं गरीब ब्राह्मण हूँ । आजतक मैंने किसीका जान-बूझकर कोई अहित नहीं किया है । तो भी मुझसे जो अपराध अज्ञानवश हो गया हो, उसके लिये मैं आपसे क्षमा चाहता हूँ । मैं नहीं समझ सका हूँ कि मेरे अतिथिके रूपमें आप लोग कौन हैं और क्यों इस अबोध बालिकाको सता रहे हैं । इससे आपको क्या मिलेगा ?' मिश्रजीकी यह प्रार्थना व्यर्थ नहीं गयी । सबको अत्यन्त आश्चर्यचकित करती हुई मिश्रजीकी पुत्रवधू कुछ बदले हुए स्वरमें बोल उठी—'मैं कौन हूँ, यह जानकर क्या करोगे ? मैं तुम्हारे घर घूमने आया था । इससे पहले भी कई बार आ चुका हूँ । परंतु इस बार इसने मुझे चोर कहकर अपमानित किया है । मैं इसे कदापि क्षमा नहीं कर सकता । इसे तो अब अपने साथ ही ले जाऊँगा ।'

यह सुनकर आर्तवाणीमें मिश्रजीने कहा—'महाराज ! आप सब कुछ करनेमें समर्थ हैं । परंतु यदि आप मेरे घर आये थे, तो दृश्यमान नर-रूप धारण करके क्यों आये थे ? इस नादान बालिकाकी समझ ही कितनी है, यह आपको पहचाननेमें असमर्थ रही । यह इसका प्रथम अपराध है । अतः आपसे प्रार्थना है कि इसे अबोध जानकर क्षमा कर दें ।' उत्तर मिला, 'अच्छा, तुम्हें ब्राह्मण जानकर तुम्हारी प्रार्थनापर इसे क्षमा कर रहा हूँ ।' मिश्रजी उत्साहित और उल्लसित होकर पुनः बोले, 'यह आपकी बड़ी कृपा है । किंतु मेरे यहाँ आप चार दिन अतिथिके रूपमें रहे, तो चलते समय यह तो बता दीजिये कि आप कौन हैं ।' उत्तर मिला, 'तो सुनो, हमलोग चार हैं—दो पुरुष, दो स्त्रियाँ । एक ब्राह्मण, एक ब्राह्मणी तथा एक नाई और एक नाइन । अच्छा, शीघ्र दरवाजे खोलकर जानेका मार्ग दो । हमलोग अब जा रहे हैं ।' मिश्रजीने कहा, 'महाराज ! दरवाजा तो मैं खोल ही रहा हूँ, पर यह तो बतलाइये कि आपलोग कितने दिनोंके लिये जा रहे हैं ?' उत्तर था—'सदाके लिये ।' मिश्रजीने कहा—'महाराज ! मुझे विश्वास दिलाइये । यह गङ्गाजली रक्खी है । आप इसे हाथमें उठाकर शपथ लीजिये ।' इतना सुनते ही पुत्रवधूने गङ्गाजली उठाकर उसका सम्पूर्ण गङ्गाजल अपने सिरपर उड़ेल लिया ।

सहसा सारा वातावरण बदल गया । ईंटोंकी वर्षा बंद हो चुकी थी । मिश्रजीकी पुत्रवधूका सारा व्यवहार भिन्न हो गया । इसके पूर्व उसे अपने शरीरका कोई ध्यान नहीं था; किंतु अब अपने श्वशुरको समक्ष देखकर उसने तुरंत साड़ीसे मुख ढाँक लिया । उसने बतलाया कि उसके सम्पूर्ण शरीरमें वेदना है । वह क्षुधा एवं पिपासासे भी आकुल है । उसे स्नान कराकर भोजन दिया गया । वह ऐसी हो गयी थी, जैसे कुछ हुआ ही न था । सभी दर्शक सम्पूर्ण घटनासे विस्मयनिमग्न थे । इस रोमहर्षक रहस्यमयी घटनाको मैंने ही नहीं, अपितु मेरे साथ कम-से-कम पाँच सहस्र नर-नारियों, बाल-वृद्धों, शिक्षित-अशिक्षितोंने अत्यन्त कौतूहलपूर्ण तथा विस्मयविस्फारित नेत्रोंसे आद्योपान्त प्रत्यक्ष देखा था ।

इस घटनाके सम्बन्धमें मैंने अनेक विद्वानोंसे चर्चा की है; किंतु कोई संतोषजनक उत्तर नहीं मिल सका । जो भी हो इस विस्मयोत्पादक घटनासे कुछ ऐसे तथ्य प्रकट होते हैं जो हमारे वैज्ञानिकों, मनोवैज्ञानिकों तथा परामनोवैज्ञानिकों (para-psycholgists) के लिये एक चुनौती हैं ।

परमार्थ-पत्रावली

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके पुराने पत्र)

(१)

सप्रेम राम-राम। आपका पत्र मिला, समाचार अवगत किये। आपने अपनेमें सभी साधनोंका अभाव लिखा, यह आपकी नम्रता है। आप मानसिक पूजा बराबर करते हैं और भगवान्‌की कृपाको देख-देखकर आपको आनन्द आता है, लिखा सो बहुत अच्छी बात है। खूब श्रद्धा और भावसे पूजा करनी चाहिये। धीरे-धीरे रुचि हो सकती है। रुचि नहीं है, ऐसी धारणा नहीं करनी चाहिये। भगवान्‌में श्रद्धा-प्रेम बढ़े इसके लिये उनके आगे रो-रोकर करुणाभावसे स्तुति-प्रार्थना करनी चाहिये। उनकी कृपासे ही सब कुछ हो सकता है। भगवान् राममें खूब प्रेम बढ़े—यह जो आपकी इच्छा है यह बहुत अच्छी है, इस इच्छाको और बढ़ाना चाहिये। अभी स्थिति अच्छी नहीं है तो कोई बात नहीं, धीरे-धीरे सब ठीक हो सकता है। अपनी ओरसे चेष्टा करते जाना चाहिये। बुद्धि, बल या और कुछ भी नहीं है तो भी कोई आपत्तिकी बात नहीं है। भगवान् तो केवल प्रेमसे ही रीझते हैं। × × × × मनसे साधन करनेका अभिप्राय पूछा सो भगवान्‌के दर्शन और उनके साथ भाषण, स्पर्श, वार्तालाप आदि नित्य-निरन्तर श्रद्धा-भक्तिपूर्वक मानसिक करने चाहिये। सबसे हरिस्मरण।

(२)

तुम्हारा पत्र मिला। समाचार अवगत किये। तुमने 'आप सम्बोधन नहीं करनेके लिये लिखा सो हम तो सामान्यतया सबको 'आप' सम्बोधन ही लिखते हैं इसलिये लिख दिया था। इसका मनमें विचार नहीं करना चाहिये। हमको पहला पत्र देनेके बाद निश्चिन्तता और भजनमें वृद्धि हुई सो बहुत अच्छी बात है। फिर गीतातत्त्वविवेचनी अध्याय ६ श्लोक ३० के अनुसार ध्यानका भी अभ्यास किया सो बहुत सुन्दर बात है। एक दिन सफलता भी मिली; किंतु फिर पहले-जैसी ही स्थिति हो गयी लिखा सो सब अवगत किया। स्थिति रोज बढ़ानी चाहिये। जब ध्यान ठीक लगता है, उस समय वृत्तियाँ सात्त्विक रहती हैं एवं राजस-तामसी वृत्तियोंके आनेपर फिर ध्यान नहीं लगता—ऐसा हो सकता है। अतः हर समय सात्त्विक वृत्तियाँ ही रखनी चाहिये। राजसी एवं तामसी वृत्तियोंको नहीं आने देना चाहिये; क्योंकि वे तो पतन करनेवाली महान् शत्रु हैं। वे उद्धारमें बाधक हैं। बराबर ध्यान लगा रहे और प्रतिपल बढ़ता रहे—यह तुम्हारी इच्छा बहुत अच्छी है। इसके लिये भगवान्‌के आगे रो-रोकर करुणाभावसे स्तुति-प्रार्थना करनी चाहिये। उनकी कृपासे सब कुछ हो सकता है। अपने लिये मनमें आवे सो लिखनेको लिखा सो भगवान्‌के दर्शन, भाषण, वार्तालाप, चिन्तन आदिको रसमय, आनन्दमय और प्रेममय समझकर हर समय करना चाहिये। हमारे पत्रकी प्रतीक्षामें और मिलनेमें प्रसन्नता होनी लिखी सो यह तुम्हारे भावकी बात है। अपनेमें धैर्यकी कमी एवं जल्दी-से-जल्दी प्रेम-प्राप्तिकी इच्छा लिखी सो इस इच्छाको और बढ़ाना चाहिये। इस प्रकार इच्छा ही प्रेम और साधनकी वृद्धिमें सहायक है। सबसे हरि-स्मरण।

(३)

सप्रेम राम-राम। तुम्हारा पत्र मिला। समाचार मालूम किये। × × × अपने आलसी स्वभावके कारण तुम मुझे जल्दी पत्र नहीं लिख सके लिखा सो ठीक है, इसका कोई विचार नहीं करना चाहिये। अपने स्वभावका सुधार करना चाहिये। तुमने अपने दुर्गुणोंकी ओर लक्ष्य कराते हुए लिखा कि परनिन्दा

सुननेमें मन जाता है, सो परनिन्दाकी ओरसे मनमें विरक्ति रखनी चाहिये । परनिन्दासे तीन पाप बन जाते हैं, जो मनुष्यके कल्याणमार्गमें बाधक हैं । (१) परनिन्दा करने और सुननेसे जिसकी निन्दा की जाती है उसकी आत्माको कष्ट होता है जिससे पाप लगता है । (२) उसके पापका छठा अंश निन्दा करनेवालेको भोगना पड़ता है । (३) पाप-कर्मका संस्कार पड़नेसे उसकी भी पापमें प्रवृत्ति हो जाती है । इसलिये परनिन्दा न तो कभी करनी ही चाहिये और न कभी सुननी ही चाहिये । तुमने लिखा कि मुझमें अवगुण भरे पड़े हैं सो इनके नाशके लिये भगवान्‌के शरण होकर करुणाभावसे रो-रोकर उनसे स्तुति-प्रार्थना करनी चाहिये । प्रेमकी कमीका कारण श्रद्धाकी कमी है । इसके लिये भी भगवान्‌से ही प्रार्थना करनी चाहिये । × × × सबसे राम-राम ।

(४)

सप्रेम राम-राम । तुम्हारा पत्र मिला । समाचार मालूम किये । हमारा स्वास्थ्य कुछ अस्वस्थ है; किंतु चिन्ताकी कोई बात नहीं है । इलाज चल रहा है । तुमने लिखा कि न तो करुणाभाव ही आता है और न आंखमें एक बूँद भी आँसू आता है सो जाना । चाहे कुछ भी न हो, फिर भी भगवान्‌के आगे रोना तो अवश्य ही चाहिये । हृदयमें दुःख होनेपर आँसू एवं करुणाभाव आ सकते हैं । प्रेमभाव बढ़े, इसके लिये भगवान्‌से कहना चाहिये । एक नंबरकी श्रद्धा भी भगवान्‌की कृपासे ही हो सकती है । × × × तुम्हारे बड़े भाईजीने वैराग्य होनेका जो उपाय पूछा है उसका उत्तर यह है कि शरीर और संसार नाशवान्, क्षणभङ्गुर, अनित्य और दुःखरूप है । इनमें वास्तवमें सुख है ही नहीं । और परमात्मा नित्य एकरस, आनन्दमय तथा शाश्वत है । इस प्रकार समझ लेनेपर संसारसे वैराग्य हो सकता है । इसके लिये *गीतामें पाँचवें* अध्यायके बाईसवें श्लोकका अर्थ देखना चाहिये । उनको हमारा राम-राम कहना चाहिये । सबसे हरि-स्मरण ।

(५)

सादर सप्रेम राम-राम । तुम्हारा पत्र मिला । समाचार ज्ञात हुए । रामायणके दोहे और चौपाइयोंके सम्बन्धमें लिखा सो मालूम किया । तुमने लिखा—'लगन बिल्कुल नहीं है, हमलोग भोगोंमें पूरे रचे-पचे हुए हैं' सो भोगोंमें पूरे रचे-पचे न होकर भगवत्प्रेममें रचे-पचे होना चाहिये, जैसे कि तुलसीदासजी रामचरितमानसमें कहते हैं—

कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम ।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम ॥

'जैसे कामीको स्त्री प्रिय लगती है और लोभीको जैसे धन प्यारा लगता है, वैसे ही हे रघुनाथजी ! हे रामजी ! आप निरन्तर मुझे प्रिय लगिये ।'

तुमने लिखा कि आप यदि कहें कि उनकी तो कृपा अपार है ही सो तो हम भी मानते हैं और प्रत्यक्ष भी है सो भगवान्‌की कृपा तो जितनी तुम मानते हो उससे भी ज्यादा है; किंतु भगवत्कृपाको प्रत्यक्ष मान लेनेपर तो आनन्द, शान्ति एवं प्रेमकी सीमा ही नहीं रहती, फिर उसके साधनमें तो शिथिलता आ ही कैसे सकती है ? तुमने लिखा कि हममें तो इतनी ताकत नहीं है—हमारी प्रार्थनामें बल नहीं है, इसलिये आपसे प्रार्थना है कि आप भगवान्‌से कह दें कि वे हममें प्रेमकी ज्वाला जला दें जिससे वह निरन्तर बढ़ती रहे सो मालूम किया; किंतु इसमें दलालकी जरूरत नहीं है, वे दयामय दीनबन्धु प्रभु सबकी सीधे ही सुनते हैं । तथा इस प्रकार भगवान्‌से कहनेकी हमारी पद्धति भी नहीं है ।····से बदलेमें राम-राम । तुमने विशेष बात लिखनेके लिये लिखा सो ठीक है । भगवान्‌की सभी चीजें मधुर हैं—

भगवान्‌का नाम, रूप, लीला, धाम, महिमा, गुण, प्रभाव, तत्त्व, रहस्य एवं वस्त्र-आभूषण—ये सभी मधुर हैं। इसी प्रकार भगवान्‌की वाणी, सुगन्ध आदि सभीको मधुर समझकर उनके दिव्य मधुर रसका आस्वादन करना चाहिये। सबसे राम-राम। मेरा स्वास्थ्य पहलेसे ठीक है। × × ×

कामके पत्र

(१)

असंतोष और ईर्षासे दुःख

सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला था। उत्तर देरसे जा रहा है। आजकल मेरे मस्तिष्ककी कुछ ऐसी स्थिति हो रही है कि मैं बहुत ही कम काम कर पाता हूँ। आप क्षमा कीजियेगा।

आपने अपने मनकी जो स्थिति तथा मानस-पीड़ाकी जो बात लिखी, सो ऐसी स्थिति, इस समय बहुत लोगोंके—अच्छे-अच्छे विचारशील तथा सम्पन्न पुरुषोंके मनकी हो रही है। इसका कारण, आपने ठीक लिखा है—वह है 'अपनी स्थितिमें असंतोष और दूसरोंकी स्थितिसे डाह।'

आप ही बताइये—आपके किस बातकी कमी है? स्त्री है, पुत्र है, मकान है, बड़ा व्यापार है, मान-इज्जत है। फिर भी आप दुखी हैं—इसीलिये हैं कि आपको जितना जो कुछ है, उससे संतोष नहीं है और दूसरे किसीके पास इससे अधिक है तो वह क्यों है, आपके पास क्यों नहीं; यह डाह है। अतः आप उससे भी अधिक पानेके लिये बेचैन हैं तथा विवेक छोड़कर घुड़दौड़में आगे बढ़ना चाहते हैं। मैं ऐसे सज्जनोंको जानता हूँ, उनमेंसे कई मुझसे बहुत स्नेहका सम्बन्ध रखते हैं, जो सब तरह धन-सम्पत्ति, मान-कीर्ति होनेपर भी असंतोषवश बड़े-बड़े नये व्यापार करने लगे और अब ऐसे बुरी तरह फँसे कि पहलेकी सम्पत्ति-कीर्ति तो गयी ही, नयी विपत्तियोंसे पिण्ड छुड़ाना बड़ा कठिन हो रहा है। उनमेंसे दो-एकको समझाया भी गया था; पर वे उस समय एक ऐसे नशेमें थे कि बात समझमें आयी ही नहीं और अब पछताते हैं।

प्रकृतिके विस्तारका अन्त नहीं है और प्रकृतिका प्रत्येक पदार्थ, प्रकृतिकी प्रत्येक परिस्थिति अपूर्ण और अनित्य—फलतः परिणाममें दुःखप्रद है। इससे कहीं भी किसी भी स्थितिपर पहुँच जाइये, कमी मालूम होगी, अभावका अनुभव होगा। उस अभावको मिटाने जाइये—या तो उसके मिटनेके पहले ही आप मिट जाइयेगा अथवा कदाचित् वह मिटा तो दूसरा उससे भी बड़ा अभाव तुरंत उपस्थित हो जायगा जो आपको नये दुःखोंमें डाल देगा।

अतः बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिये कि वह इस क्षेत्रमें संतोष करे। महर्षि पतञ्जलिने अनुभूत सत्य बतलाया है—

संतोषादनुत्तमसुखलाभः। (योगदर्शन २ । ४२)

'संतोषसे सर्वश्रेष्ठ सुखकी प्राप्ति होती है।'

भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें भक्तके लक्षण बतलाते हुए एक ही प्रसङ्गमें दो बार संतोषकी चर्चा की है—

'संतुष्टः सततं' (१२ । १४), **'संतुष्टो येन केनचित्।'** (१२ । १९)

'निरन्तर प्रत्येक परिस्थितिमें संतुष्ट' और 'जिस किसी प्रकारसे रहना पड़े उसीमें संतुष्ट रहे।' इसका अभिप्राय यह कि संसारकी भोगदृष्टिसे दुःख, अभाव, प्रतिकूलता, विपत्ति आदि हों तो उनमें भी भक्त संतुष्ट रहे।

पद्मपुराणमें कहा गया है—

सर्वत्र सम्पदस्तस्य संतुष्टं यस्य मानसम्।
उपानद्गूढपादस्य ननु चर्मावृतेव भूः॥
संतोषामृततृप्तानां यत्सुखं शान्तचेतसाम्।
कुतस्तद्धनलुब्धानामितश्चेतश्च धावताम्॥
असंतोषः परं दुःखं संतोषः परमं सुखम्।
सुखार्थी पुरुषस्तस्मात् संतुष्टः सततं भवेत्॥
(पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड अ० १९)

'जिसका मन संतुष्ट है, उसके लिये सर्वत्र सुख-सम्पत्ति भरी है, कहीं भी दुःख-विपत्ति नहीं है, वह हर हालतमें सुखी है वैसे ही, जैसे जिसके पैर जूतेसे ढके हैं, उसके लिये मानो सारी पृथ्वी चमड़ेसे ढकी है। संतोषरूपी अमृतसे तृप्त और शान्तचित्तवाले पुरुषोंको जो सुख प्राप्त है, वह धनके लोभसे इधर-उधर दौड़-धूप करनेवालोंको कहाँ मिल सकता है ?

सबसे बड़ा दुःख है—'असंतोष' और सबसे बड़ा सुख है—'संतोष'। अतएव जिनको सुख चाहिये उन्हें प्रत्येक परिस्थितिमें निरन्तर संतुष्ट रहना चाहिये।'

इन सब बातोंपर तथा शास्त्रवचनोंपर ध्यान दीजिये। आप तो संसारकी दृष्टिसे सब प्रकारसे सुखी और सम्पन्न हैं। आपका यह दुःख बेसमझीसे असंतोष और ईर्ष्या—दूसरोंके उत्कर्षको न सह सकनेकी दूषित वृत्तिसे बुलाया हुआ है। आप उन करोड़ों-करोड़ों अपने ही सरीखे शरीर-मनवाले स्त्री-पुरुषोंकी स्थितिको देखिये जो भाँति-भाँतिसे अभावग्रस्त हैं, विपन्न हैं, पूरा खाने-पहननेको नहीं पा रहे हैं। उनकी ओर दयार्द्रहृदयसे देखकर अपनी स्थितिके लिये भगवान्‌के कृतज्ञ बनिये और भगवान्‌की दी हुई इस स्थितिसे यथायोग्य यथासाध्य उन अभावग्रस्तोंकी सेवा कीजिये। संतोष, मुदिता और करुणावृत्ति मनमें आयी कि आप सुखी हो जायँगे। अपनी स्थितिपर संतोष करना, दूसरोंके उत्कर्षको देखकर मुदित होना और दुखियोंको देखकर करुणापूर्ण हो जाना—मानवका परम कर्तव्य है और यह दुःखनाशका एक सर्वोत्तम उपाय है। शेष भगवत्कृपा।

(२)

मनको सद्भाव-सद्गुणोंसे पूर्ण रखिये

आपका पत्र मिला। उत्तरमें निवेदन है कि बहुत बार अपने ही मनके भावोंकी प्रतिमूर्ति बाहर दूसरोंमें दिखायी देती है। जिसके मनमें असत्य, काम, क्रोध, लोभ, मद, द्वेष, वैर, ईर्ष्या, हिंसा, प्रतिहिंसा, घृणा आदि दुर्भाव और दोष भरे रहते हैं, उसे जगत्‌के प्रत्येक मनुष्यमें न्यूनाधिकरूपसे ये दोष ही दिखायी देते हैं। जितने दोष दीखते हैं उतनी ही उनके प्रति द्वेष, घृणा आदिकी वृत्तियाँ बनती तथा बढ़ती हैं। इसके विपरीत जिनके मनमें सत्य, त्याग, क्षमा, संतोष, विनय, मुदिता, प्रेम, सेवा, करुणा, सहानुभूति, सौहार्द, शील, परदुःखकातरता, वात्सल्य आदि सद्भाव और सद्गुण रहते हैं, उन्हें जगत्‌के प्रत्येक मनुष्यमें न्यूनाधिकरूपमें ये सद्गुण ही दिखायी देते हैं। फलतः सबके प्रति उनका आत्मीयभाव, सौहार्द, सेवा-तत्परता आदि बढ़ते रहते हैं, जिससे परस्पर सुख-समृद्धि तथा त्याग-प्रेमकी वृद्धि होती है। अतएव आप अपने मनसे दुर्भावों, दुर्विचारों और दोषोंको निकालकर उनकी जगह सद्भाव, सद्विचार और सद्गुणोंको भरिये और उनको बढ़ाइये। जिसके जैसे मानस भाव होते हैं, उसको वैसे ही वातावरण, सङ्ग तथा व्यक्ति मिलते हैं, जिससे उन भावोंकी सतत वृद्धि होती है।

किसीके सम्बन्धमें मनमें कुविचार कभी मत कीजिये कि 'यह हमारा शत्रु ही है। इसके विचार कभी प्रेमके हो नहीं सकते। यह कभी सद्विचार, सद्व्यवहार कर ही नहीं सकता, इसमें दुर्गुण-ही-दुर्गुण भरे हैं

और ये दुर्गुण ही सदा वर्तमान रहेंगे । कभी भी इसमें सद्गुण आ ही नहीं सकते, यह कभी उठ ही नहीं सकता, गिरता ही रहेगा, इसका भविष्य अन्धकारमय ही रहेगा, इसको सद्बुद्धि कभी होगी ही नहीं और इसका सद्भाग्य कभी प्रकट होगा ही नहीं ।' प्रथम तो यह बात है कि किसीके सम्बन्धमें आपका सोचना सर्वदा गलत या न्यूनाधिकरूपमें गलत हो सकता है । किसी भी कारणवश जिसके प्रति आपकी द्वेष-बुद्धि हो जाती है, उसके लिये आपकी आँख ही बदल जाती है । आप मिथ्या नहीं बोलते; पर आपकी बदली हुई आँखें—जैसे हरा चश्मा लगा लेनेपर सब कुछ हरा ही दीखता है, वैसे ही—उसमें गुण न देखकर दोष ही देखती हैं । दूसरे, किसीको अवगुणोंकी खान मानना और उसके सद्गुणसम्पन्न बननेमें अविश्वास करना—सर्वसमर्थ सर्वसुहृद् भगवान्की कृपा तथा शक्तिपर संदेह करना है। भगवान् क्षणभरमें क्या-से-क्या कर सकते हैं।

'मसकहि करइ बिरंचि प्रभु बिधिहि मसक तें हीन ।'

'प्रभु चाहें तो मच्छरको ब्रह्मा बना सकते हैं और ब्रह्माको मच्छर बना दे सकते हैं ।' उनकी शक्ति तथा कृपापर विश्वास कीजिये और यदि किसीमें दोष-दुर्गुण दिखायी दें तो प्रभुसे प्रार्थना कीजिये कि वे अपनी सहज कृपासे उसके दोष-दुर्गुणोंका नाश करके उसे सर्वथा निर्दोष सद्गुणसम्पन्न बना दें और ऐसी कृपा करें, जिससे आपको सभीमें भगवान् तथा भगवान्के दिव्य गुण ही दिखायी दें । यही संतकी आँख है जो भगवत्कृपासे प्राप्त होती है और इसी स्थितिमें मानवताका विकास कह सकते हैं । शेष भगवत्कृपा ।

लँगड़ा भिखारी

[एक सच्ची कहानी]

(लेखक—श्रीहरिसिंहजी यादव बी० ए०, साहित्यरत्न)

उस कस्बेमें भिखारी तो और भी कई थे परंतु लँगड़ा एक ही था । उस लँगड़ेका असली नाम क्या था, यह कोई नहीं जानता था । सब उसे लँगड़ेके ही नामसे पुकारते थे । उसको भी कभी अपने इस नामके विरुद्ध शिकायत करते नहीं सुना गया । मालूम नहीं वह इस कस्बेमें कब आया था । लोग उसे बहुत दिनोंसे यहीं देख रहे थे । इस अवधिमें यहाँ और भी कई भिखारी आये । लेकिन वे सब होते बरसाती मेंढक । थोड़े दिन यहाँ टिकते, फिर कहीं दूसरे नगरमें चले जाते । पर लँगड़ा जिस दिनसे यहाँ आया था, यहीं टिका हुआ था ।

वह चौक बाजारमें स्थित एक टूटी-फूटी पुरानी हवेलीके निचले हिस्सेमें बने एक तहखानेमें रहता था । तहखाना क्या था । कूड़ेका घर था । तरह-तरहके मैले-कुचैले फटे-पुराने कपड़ोंका एक ढेर । मिट्टी, टीन और लकड़ीके अनेकों टूटे-फूटे बर्तन । इसके अतिरिक्त सैकड़ों छोटी-बड़ी धूलसे भरी शीशियाँ । जैसे कोई बड़ा गोदाम हो । यहीं उसकी अनोखी सम्पत्ति थी । जिसकी वह बहुत देख-भाल करता था ।

कुछ खा-पीकर वह प्रातः आठ बजे ही अपने कार्य-पर निकल जाता । बारह बजेतक समूचे बाजारका चक्कर लगा लेता । फिर कहीं किसी सस्ते ढाबेमें जाकर भोजन करता । तत्पश्चात् कुछ देरके लिये किसी पेड़की छायामें सुस्ता लेता और फिर निकल पड़ता

गलियों और मोहल्लोंमें भीख माँगने। रात्रिको भोजनादि करनेके पश्चात् ही केवल सोनेके लिये वह अपने तहखानेमें लौटकर आता। यही उसकी दिनचर्या थी।

उसका स्वभाव कोमल और वाणी मधुर थी। कभी-कभी कस्बेके बच्चे उसको लँगड़ा कह-कहकर चिढ़ाते थे; लेकिन वह हँसकर उनको टाल देता था। कभी किसीने उसको क्रोधित होते नहीं देखा।

उसकी आमदनी लगी बँधी थी। वैसे तो जिस दरवाजेपर भी वह जाता, भिक्षा अवश्य पाता था। किंतु कभी-कभी कहींसे फटकार भी मिल ही जाती। सुनकर लँगड़ा लौट पड़ता। लेकिन उसके मुखपर विषादकी रेखाएँ न उभरतीं, निराशा न झलकती। वही सदैव रहनेवाली हल्की मुस्कान खेलती रहती। वे ही निर्विकार भाव होते।

लोगोंको उसे रोज देखनेकी एक आदत-सी पड़ गयी थी। कई धार्मिक रूढिवादी व्यक्तियोंके लिये तो वह भाग्य-अभाग्यका प्रतीक भी बन गया था। जब वे घरसे निकलते तो उसीको देखकर शकुन-अपशकुन होनेका अनुमान लगा लेते। इस प्रकार वह कस्बेका एक आवश्यक प्राणी हो गया था।

एक दिनकी बात कि लँगड़ा बाजारमें दिखायी न दिया। आजतक कभी ऐसा नहीं हुआ था। चिलचिलाती धूप हो, कड़कड़ाती सर्दी हो या भयानक वर्षा और तूफान हो, लँगड़ेकी गति एवं समयमें कोई अन्तर नहीं आता था, पर आज ग्यारह बज गये थे और वह कहीं दिखायी नहीं दे रहा था। लोगोंके माथे ठनके। कहीं कुछ अनहोनी तो नहीं हो गयी ? या वह इस कस्बेको छोड़कर कहीं बाहर चला गया ? कहीं बीमार न हो गया हो ? लोग तरह-तरहकी अटकलें लगाने लगे।

एकाएक समूचे बाजारमें एक शोर-सा मच गया। कुछ बच्चोंने आकर खबर दी कि 'लँगड़ा तहखानेमें मरा पड़ा है।' शवको हटानेके लिये नगरपालिकाके कर्मचारी दौड़े गये। तहखानेके सामने कुछ तमाशा देखनेवाले राहगीरोंकी भीड़ भी जमा हो गयी। कर्मचारी-गण जब शवके शरीरसे कपड़े उतार रहे थे तो अचानक बनियानकी जेबमें एक कागजको देखकर उनके हाथ रुक गये। वह कागज बाहर खड़े एक सभ्य व्यक्तिको दिया गया। उस व्यक्तिने जब उस कागजको खोलकर पढ़ा तो वह विस्मित रह गया। यह कागज उस लँगड़ेकी वसीयत थी, उसमें लिखा था—'इस मैले-कुचैले चिथड़ोंके ढेरके नीचे एक लोहेका बक्स है। उसमें मेरे जीवन भरकी कमाई है। वह जितना भी है सब मैंने इसी कस्बेमें आकर एकत्रित किया है। इसलिये मैं समझता हूँ कि उस पूँजीपर सारे कस्बेका समान अधिकार है। मेरी हार्दिक कामना है कि मेरे मरनेके पश्चात् इस धनराशिसे कस्बेमें एक सुन्दर पुस्तकालय बनवा दिया जाय, जिसमें बैठकर सब लोग ज्ञान प्राप्त किया करें।'

चिथड़ोंका ढेर हटाया गया। नीचे जंग खाया हुआ एक छोटा-सा बक्स निकला। जब उसे खोला गया तो ऊपरतक रुपयों-पैसोंसे भरा पाया। गिनती की गयी बीस हजारसे कुछ अधिक रुपये थे।

आँखें फटी-की-फटी रह गयीं। समूचा वातावरण लँगड़े भिखारीके जयकारोंसे गूँज उठा। भिखारी होते हुए भी उसमें ऐसी निर्लिप्त भावना, ऐसी विकसित बुद्धि, ऐसे परिष्कृत विचार, मानव-कल्याणकी ऐसी तीव्र सदिच्छा! धन्य है, धराके ऐसे सुपुत्र। उस महाप्राणकी श्रद्धाञ्जलिमें शत-शत मस्तक नत हो गये।

पढ़ो, समझो और करो

(१)

माँ-दुर्गाकी प्रत्यक्ष कृपा

ज्येष्ठकी तपती दुपहरी थी। पानीके बिना प्राण निकलनेवाली प्यास और ग्रीष्मकी भयंकर ज्वालासे झुलसे हुए उदरकी क्षुधासे पूरा परिवार ग्रसित था। घरमें एक दाना न था, जिससे परिवारके नन्हे बच्चोंकी क्षुधा शान्त कर ली जाती। कहींसे कोई आशा ही नहीं दिखलायी पड़ती थी कि इतनेमें एक तरबूजवाला तरबूज लिये द्वारपर आया। पूर्वपरिचित होनेसे उसने तरबूजके दो किलोका एक टुकड़ा दे दिया—इस आश्वासनपर कि तनख्वाहपर उसे पैसे मिल जायँगे। क्षुधा और प्यास—दोनोंका निराकरण—तरबूजके छोटे-छोटे टुकड़ोंसे किया गया—किंतु कुछ अंशोंमें ही।

तरबूजका एक टुकड़ा इसलिये रख छोड़ा कि संध्याको बच्चोंको दे दिया जायगा। संध्याको बचे हुए टुकड़ेको ज्यों ही उठाया गया तो वह टुकड़ा बड़े-बड़े चींटोंसे भरपूर मिला। तरबूजकी ललाई शायद ही कहीं-कहीं थोड़ी-बहुत रह गयी होगी। आखिर धो-धाकर उन बचे-बचाये टुकड़ोंसे ही बच्चोंका मन बहला दिया गया।

गृहस्वामिनी चिन्ताग्रस्त थी कि आखिर तनख्वाहकी तारीखको अभी आठ दिनकी देरी है,—क्या होगा, कैसे होगा। गृहस्वामी चिन्तित अवश्य था, किंतु आश्वस्त था कि माँ-दुर्गा अवश्य इस पीड़ाको दूर करेंगी।

रात हुई बच्चे सो गये। गृहस्वामिनी माँ-दुर्गाके सम्मुख विलाप करती हुई दीपको प्रज्वलित करने लगी तथा गृहस्वामी हाथमें धूप-बत्ती लिये प्रेमाश्रुसे माँ-दुर्गाकी छविको निहारनेमें ही आनन्दित हो रहा था। माँ अपने पुत्रको कभी दुखी कैसे देख पाती। बाहरसे किसी व्यक्तिने गृहस्वामीको आवाज देकर बुलाया और पचास रुपये देकर कहा कि 'महाशयजी! क्षमा करें, मैंने आपके रुपयोंको लौटानेमें आशासे भी बहुत अधिक विलम्ब किया है। मैं सदा आपका आभारी रहूँगा।'

दो वर्ष पहले दिये गये पचास रुपये आज अप्रत्याशितरूपसे मिलनेपर गृहस्वामीके आनन्दका ठिकाना न रहा। जाकर माँ-दुर्गाके सम्मुख फूट-फूटकर दम्पतिने अपने प्रेमाश्रु समर्पित किये। सच्चे हृदयसे पुकारी जानेवाली शुद्ध एवं निश्छल पुकार सुनकर माँ-दुर्गा कभी शान्त नहीं बैठ सकती। माँ—इस प्रकारकी कृपा सबको दे तथा सबका कल्याण करे, ऐसी भावना लेकर माँ-दुर्गाके चरणोंमें यह निवेदन करते मुझे बहुत ही प्रसन्नता है।

—कुँवरकिशोर राय

(२)

सच्चा हरिजन

साबरमती मैयाकी गोदमें बसा है एक छोटा-सा पीपलिया गाँव। ग्राममें केवल तीन ही वर्ण हैं—हरिजन, राजपूत और बनिया। बनियोंका धंधा है ब्याजपर उधार देना, राजपूतोंका है गाँवकी नींद हराम करके आसपास बसनेवाले बनियोंके पैसे लूटना तथा नदी-किनारेके जंगलसे शिकार कर लाना और हरिजनोंका धंधा है साबरमतीकी रेतीली तराईकी जमीनमें आलू, सक्करकंदी और धान उगाकर पेट पालना।

इस गाँवमें मणिया बाबा रहता है। जातिका हरिजन; परंतु आत्मा बड़े संत-महंतको भी लज्जित कर दे ऐसी। इससे गाँवके लोग उसे 'बाबा' कहने लगे। नदीके किनारेपर ही बनियोंके मुहल्लेमें नानू माणेककी ऊँची हवेली सबका ध्यान खींचती थी। नानू माणेक हरिजनोंको चाहे जितने पैसे उधार देता, पर दूसरे ही वर्ष दूने पैसे वापस करने पड़ते। जो लोग दूना देना न चुका सकते, उनको नानू माणेक राजपूतोंसे भीतरी

मार मरवाता। अवश्य ही राजपूतोंसे पैसे वापस माँगते विचार करना पड़ता, कहीं कोई राजपूत पट्ठा घरपर जलता तिनका न डाल दे !

यह बात है प्रसिद्ध छप्पनिये अकालके समयकी। मणिया बाबा नदीकी तराईमें खेती करने नानू माणेकसे पाँच सौ रुपये उधार लाया था। दो वर्ष बीत गये। नानू माणेक बिगड़ा····मणिया बाबा भीतरी मार खाकर चारपाईपर पड़ गया। अच्छा होनेके लिये दवादारू करानेकी भी आर्थिक शक्ति नहीं थी उसमें। कारण, इस साल नदीमें जल नहीं रहा था। इससे खेती सूख गयी थी। धीरे-धीरे बीमारी घटी। मणियाके मनमें इतनी ही इच्छा थी कि 'कब अच्छा होऊँ, कब चौमासा आवे और कब मैं बनियेका ऋण चुका पाऊँ।' दिन-पर-दिन बीतते गये। मणिया बाबा लाठीके सहारे चलने-फिरने लायक हुआ। उसकी एक ही इच्छा थी कि 'कैसे बने जितना ऋण जल्दी चुकाऊँ।' मणियाने अपनी पत्नीका मंगलसूत्र बेचकर पाँच सौ रुपये इकट्ठे किये।

पाँच सौ रुपयोंको दूना करके चुकाना था—अतः उसने विचार किया पाँच सौ अभी दे दूँ और बाकी पाँच सौ अगले वर्ष दे दूँगा।

मैले कमरबंदकी छोरमें उसने पाँच सौकी पोटली बाँधी और पहुँचा बनियोंके मुहल्लेमें। पर यह क्या ? नानू माणेकका घर धू-धू जल रहा था। किसी राजपूत-पट्ठेने नानूसे हजार रुपये उधार माँगे और न देनेपर उस राजपूतने यह पराक्रम दिखाया था। बनिया और बनियानी जलते घरसे बाहर भाग निकले, परंतु दूसरी मंजिलपर उनका दो वर्षका बच्चा सोया ही रह गया। अब उसे बचाने कौन जाय ? राजपूत तो नानू माणेकके शत्रु बन रहे थे। वह पुकार रहा था—'मेरे लालको कोई बचाओ—बचाओ।' बूढ़े मणिया बाबामें फिर एक बार नयी जवानी चमकी। छूत बनियोंके टोलेमेंसे रास्ता करता हुआ वह अछूत मणिया आगे आ गया। विचार करनेके लिये समय नहीं था। शरीरकी परवा न करके जैसे-तैसे बाबा दूसरी मंजिलपर जा पहुँचा। बच्चा कलेजा कँपा देनेवाली चीख मार रहा था। मणियाने बच्चेको उठाया और खिड़कीसे फेंक दिया। पिताने नीचे उसे थाम लिया। बच्चेकी प्राणरक्षा हो गयी। पिताके निर्दय हृदयने सहृदय बाबाको आशीष दी। नानू माणेक सोच रहा था, बाबा नीचे उतरे तो मैं उसपर किये अपने अत्याचारोंके लिये उससे माफी माँगूँ। पर अधिकांशमें होता यह है कि जहाँ हृदय पिघलता है, वहाँ उसे पिघलानेवाला अदृश्य हो जाता है। दूसरी मंजिलकी खिड़कीसे कूदकर नीचे गिरे, इससे पहले ही मणिया बाबाके सामने खिड़कीपर एक जलता हुआ बड़ा पटड़ा गिरा और उसी समय अछूत शरीरका छूतके घरमें अग्निसंस्कार हो गया ! 'अखण्ड आनन्द'

—अशोककुमार सोभालाल मेहता

(३)

अहिंसाकी प्रबल विजय

किसी विदेशके द्वारा कही हुई बेसिर-पैरकी बातको तो हम मान लेते हैं, परंतु जीवनदायक अपने शास्त्रों-की बात नहीं मानते। हमारा अपने शास्त्रोंपर विश्वास हो इसी भावनासे यहाँ यह घटना लिखी जाती है। हमारे योगदर्शनमें कहा है—

अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः।

अर्थात् जब मनुष्य मनसा-वाचा-कर्मणा अहिंसाका पालन करता है तो उसके समीप सभी प्राणी वैर करना छोड़ देते हैं। शेर भी उसके पैरोंमें कुत्ते-बिल्लीके समान लेटता है। यह सच्ची घटना इसी बातको सिद्ध करनेवाली है। घटना आर्यसमाजके प्रसिद्ध नेता गुरुकुल विश्वविद्यालय, काँगड़ीके संस्थापक स्वामी श्रद्धानन्दजीकी छात्र-अवस्थाकी है, जो उन्होंने अपनी आत्मकथामें लिखी है। वे लिखते हैं—

'मैं विचित्र नास्तिक था। जो योगाभ्यास और उसकी विभूतियोंपर विश्वास रखनेवाला था। प्रयागमें पढ़ते हुए मैंने सुना कि त्रिवेणीपार झूँसीके जंगलमें एक महात्मा रहते हैं, जिनके वशमें एक शेर है। दिनको वे अन्तर्धान रहते हैं, केवल रातको उनके दर्शन हो सकते हैं। मैं अपने मित्र बुद्धसेनके साथ शामका भोजन कर घूमते हुए दस बजे रात्रिको आश्रममें पहुँचा। एक केवल कौपीनधारी वृद्ध महात्माको मैदानमें समाधिस्थ बैठे पाया। तीन बजेतक न हमारी आँखें झपकीं और न उनकी समाधि खुली। तीन बजेके लगभग शेरकी गरज सुनायी दी। फिर वह सीधा महात्माकी ओर आता दिखायी दिया। समीप पहुँचनेपर उनके पैर चाटने लगा। महात्माने आँखें खोलीं। शेरके सिरपर प्यारका हाथ फेरा और कहा—'बच्चा! आ गया, अच्छा अब चला जा।' शेरने सिर चरणोंमें रख दिया और उठकर जंगलकी राह ली। उसी समय हम दोनोंने पैर छूकर महात्माको प्रणाम किया और इस अद्वितीय विभूतिपर आश्चर्य प्रकट किया। इसपर महात्माने जो उत्तर दिया वह कभी नहीं भूलता।

'यह कोई विभूति नहीं है बच्चा! इस शेरको किसी शिकारीने गोली मारी थी। उसके घावकी पीड़ासे यह हृदयवेधक शब्द कर रहा था। शायद प्यासा था। मैंने पानी पिलाया और जंगलसे एक बूटी लाकर इसके पैरमें लगायी। घाव अच्छा होने लगा। जबतक मैं दवाई लगाता, यह नित्य मेरे पैरको चाटता। जब नीरोग हो गया तब भी इसका वह व्यसन नहीं छूटा। नित्य मेरी उपासना-समाप्तिपर आ जाता है। सुनो बच्चा! अहिंसाका अभ्यास और सेवा व्यर्थ नहीं जाते।'

—धर्मदेव स्नातक (संचालक गुरुकुल आश्रम अमर सेना पो० खरियारोड)

(४)

अपढ़ विद्वान्

एक बार मैं बड़ोदासे कमाटीबागमें आये हुए अजगरको बड़े ध्यानसे देख रहा था। पीछेसे एक अशिक्षित ग्रामीण बोल उठा—'यह भी कोई अजगर है साहब ? राचरड़ाके चरागाहके अजगर कभी देखें, वे तो पूरे मनुष्यको निगल जाते हैं।' इस भाईकी बातोंमें मुझे मजा आया तो मैंने कुछ बातोंके अन्तमें उससे पूछा—'अभी कहाँसे आ रहे हो ?'

'पावागढ़से चलकर आ रहा हूँ, साहब।' उसने कहा।

मैंने पूछा—'चलकर क्यों ?' तो उसने ब्लेडसे कटी हुई कुरतेकी जेब दिखलाकर कहा—'रुपये पैंतालीस गये। जैसा संयोग था। प्रभुकी मर्जी साहब! अब तो चलकर अहमदाबाद जाऊँगा और वहीं किसी जान-पहचानवालेसे पैसे उधार लेकर अपने गाँव जाऊँगा।'

पावागढ़के बस स्टैंडपर इस भोले-भाले ग्रामीणकी जेब कटी थी। वहाँसे चलकर यह बड़ोदा आया और बड़ोदासे चलकर अहमदाबाद जाना चाहता है—इस खयालसे सहानुभूतिपूर्वक मैंने कहा—

'गाड़ीमें ही जाना है न ?'

तुरंत ही वह बोल उठा—'सरकारका ऐसा गुनाह कौन करे साहब ?' फिर कहने लगा—'पटेल हूँ साहब! किसीके सामने हाथ पसारना तो हमारे लिये सिर कटाने-जैसा है। दो दिनमें पहुँच जाऊँगा।' इस भोले ग्रामीण भाईने—हम चार व्यक्ति थे—किसीसे न तो कुछ माँगा, न लाचारी दिखलायी और अपना रास्ता पकड़ा। दो-चार कदम ही आगे गया होगा कि मैंने दौड़कर पकड़ लिया। मुझे इसकी ईमानदारीका पूरा विश्वास हो गया था। मैंने शुरूसे टिकट खरीद देनेकी बात कही और बड़ोदामें रहनेवाले कड़ीके एक सज्जनसे सिफारिश कर दी और उसे उन सज्जनके घर जानेका निश्चय किया, परंतु उसने मेरा प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया।

इस ग्रामीणकी चार बातें मेरे हृदयको स्पर्श कर गयीं—(१) सारा पैसा चले जानेपर भी उसका दुःख रोनेके बदले—जेबकतरेको शाप देनेके बदले जैसी 'प्रभुकी मर्जी' इस प्रकारकी सरल श्रद्धा। (२) रातको तीन बजे पावागढ़से चलकर बड़ोदा आने और यहाँसे चलकर अहमदाबाद जानेकी उसकी निर्भयता, दृढ़ता और श्रमसहिष्णुता। (३) ऐसी स्थितिमें भी किसीके सामने हाथ पसारनेकी इसकी अनिच्छा और (४) बिना टिकट सरकारका गुनाह कौन करे—ऐसी इसकी आदर्श समझदारीकी नीति। यही तो विद्वत्ता है। 'अखण्ड आनन्द' —'अनामी'

(५)

सस्ता सफल इलाज

(१) अर्श (बवासीर) के तथा दूसरे मस्सोंकी दवा—

लोग पान खाते हैं। पानका डंठल फेंक देते हैं। पर वह डंठल बड़े कामकी चीज है। पान कोई-सा भी हो (बंगला, मघई, मलबारी, मीठा) उसके डंठलको मुँह, गले, नाक या किसी भी अङ्गके मस्सेपर घिसना चाहिये। तीन दिन घिसनेपर कुछ राहत मिलेगी। एक सप्ताहमें मस्सा गिर जायगा। गुदामें बवासीर होनेपर डंठलको कुचलकर रस निकालना चाहिये, फिर उसमें पानमें खानेका जरा-सा चूना मिलाकर रोज मस्सेपर लगाना चाहिये। तीन सप्ताहमें मस्सा गायब हो जायगा।

बवासीरमें खून गिरता हो तो एक तोला नागकेसर बारीक पीसकर आधा पाव या पावभर मीठे दहीमें डालकर—मिलाकर प्रातःकाल खा लेना चाहिये। तीन दिन प्रयोग करनेपर खून गिरना बंद हो जाता है।

(२) आगसे जलनेपर जलन मिटानेकी दवा—

कहीं कपड़े आदिमें आग पकड़ लेनेपर दौड़ना-भागना नहीं, कपड़ा फट सके—दूर किया जा सके तो करना तथा जमीनपर दायें-बायें लोटना चाहिये। इससे अग्नि बुझ जायगी—तदनन्तर उसपर ओलेका जल छिड़कना चाहिये, जलेपर पानी नहीं डालना चाहिये।

बरसातकी मौसममें या जब कभी ओले गिरें, तब उन्हें किसी बरतनमें एकत्र करना चाहिये, फिर गलनेपर उनका जल छानकर काँचकी शीशी या काँचके भाँड़में भर रखना चाहिये और जलनेपर उसको छिड़कना चाहिये। छिड़कते ही जलन शान्त हो जायगी; तदनन्तर बरनोल या अन्य कोई दवा लगा देनी चाहिये।

(३) रक्तप्रवाह (Bleeding) की दवा—

यह रोग प्रायः स्त्रियोंको होता है और वे बेचारी लज्जा-संकोचवश किसीको बतातीं नहीं। रोग बढ़ जाता है और बड़ी परेशानी होती है। इसकी बड़ी सरल सफल दवा है—

पसारीके यहाँसे २ छटाँक (दस तोले) मुलतानी मिट्टी ले आइये। उसे अच्छी तरह महीन पीसकर रात्रिके समय उसमेंसे १ छटाँक (पाँच तोले) किसी काँचके बरतनमें डालकर उसमें बीस तोले (एक पाव) जल मिला दीजिये। तदनन्तर किसी लकड़ीसे उसे खूब मिलाकर उसे ढककर रख दीजिये। प्रातःकाल—

'अच्युताय नमः, अनन्ताय नमः, गोविन्दाय नमः'

—इस मन्त्रकी एक मालाका रोगीसे जप कराकर रातको रखे हुए बरतनमेंसे निथरा जल लेकर रोगीको पिला दीजिये। दूसरे दिन इसी प्रकार आधी छटाँक (ढाई तोले) मुलतानी मिट्टी तथा तीसरे दिन भी आधी छटाँक (ढाई तोले) मिट्टीका निथरा हुआ जल पिलाइये। कैसा भी रक्तप्रवाह हो, इससे बंद हो जाता है। यह अनुभूत है। इस दवासे स्त्री या पुरुषोंके पेशाबमें आनेवाला खून भी बंद हो जाता है।

रोग अच्छा होनेपर अपनी स्थिति तथा इच्छानुसार गौओंको कुछ घास खिलाना चाहिये।

—श्रीराधेश्याम 'मौनी बाबा'

रजि० सं० एल्० १७५

आवश्यक सूचना

गीताप्रेस-कल्याण आध्यात्मिक संस्था है। इसमें ऐसे सज्जन या सज्जनोंकी आवश्यकता है जो आध्यात्मिकजीवन हों; श्रुति-स्मृति-पुराण आदि शास्त्रोंको मानते हों; भगवान्‌की सत्तामें और उनके निर्गुण-सगुण, निराकार-साकार—सभी रूपोंमें अटल विश्वास रखते हों, किसी मतका आग्रह न रखकर सभी सम्प्रदायोंका आदर करनेवाले हों और वर्णाश्रमको मानते हों। जो घर-परिवारके उत्तरदायित्वसे मुक्त, स्वस्थ-शरीर, त्यागी, सदाचारी, परिश्रमी, शुद्ध निरामिष खानपान करनेवाले, हिंदू-संस्कृतिमें पूर्ण श्रद्धावान्, मिलनसार तथा विभिन्न प्रकृतिके लोगोंके साथ मिल-जुलकर प्रेमसे रह सकते हों एवं संस्कृत, अंग्रेजीके विद्वान् हों। अन्यान्य देशी-विदेशी भाषा जानते हों तो और भी अच्छा है। गीताप्रेसकी नीतिसे जानकार जो ऐसे सज्जन गीताप्रेस तथा कल्याणके माध्यमसे जनताकी सेवाके द्वारा भगवान्‌की सेवाके लिये सहर्ष प्रस्तुत हों, वे मन्त्री गोविन्द-भवन, द्वारा गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर) उ० प्र० के पतेपर कृपापूर्वक पत्र लिखें।

क्षमा-प्रार्थना और नम्र-निवेदन

भाई हनुमानप्रसाद पोद्दार इधर कुछ ऐसी मानसिक तथा शारीरिक परिस्थितिमें हैं कि वे पत्रव्यवहार प्रायः कर ही नहीं पा रहे हैं। हजारों व्यक्तिगत पत्र बिना उत्तर दिये पड़े हैं। उन्हें इस बातका बड़ा खेद है कि वे उत्तर नहीं लिख सके; पर वे निरुपाय हैं। अतएव वे सबसे क्षमा-प्रार्थना करते हैं और यह नम्र-निवेदन करते हैं कि अत्यन्त आवश्यक होनेपर ही उनको कोई सज्जन पत्र लिखें एवं उसका उत्तर देरसे मिले या न मिले तो कृपया क्षमा करें।

इसी प्रकार आजकल वे परिस्थितिवश अधिक समय एकान्तमें रहते हैं। मिलना-जुलना बहुत ही कम हो पाता है। अतएव नम्र-निवेदन है कि उनसे मिलना चाहनेवाले महानुभाव पहले पत्र लिखकर पूछ लें, तब पधारनेकी कृपा करें। नहीं तो, सम्भव है उन्हें निराश लौटना पड़े।

श्रीगीता-रामायण-प्रचार-संघ

संघका कार्यालय गीताप्रेस, गोरखपुरसे स्थानान्तरित होकर स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश) चला गया है। अतएव सदस्यों आदिको अब निम्नलिखित पतेपर ही पत्रव्यवहार करना चाहिये।

मन्त्री—श्रीगीता-रामायण-प्रचार-संघ, गीताभवन, पो० स्वर्गाश्रम (जि० पौड़ी गढ़वाल)

वाया ऋषिकेश, उत्तरप्रदेश